अंक : १३४

अप्रैल - जून २०१६

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

कहानियां

मालती जोशी • डॉ. अशोक भाटिया • कुसुम भट्ट

नीता श्रीवास्तव • डॉ. पूरन सिंह • सुषमा मुनींद्र

आमने-सामने
सुषमा मुनींद्र

सागर-सीपी
चंडीदत्त शुक्ल

२० रुपये

अप्रैल-जून २०१६
(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"

संपादिका
मंजुश्री

संपादन सहयोग
डॉ. राजम पिल्लै
जय प्रकाश त्रिपाठी
अशोक वशिष्ठ
अश्विनी कुमार मिश्र

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

●सदस्यता शुल्क●
आजीवन : ७५० रु., **त्रैवार्षिक** : २०० रु.,
वार्षिक : ७५ रु.,
कृपया सदस्यता शुल्क
मनीऑर्डर, चैक द्वारा
केवल **"कथाबिंब"** के नाम ही भेजें.

●रचनाएं व शुल्क भेजने का पता●
ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई-४०० ०८८.
फोन : २५५१ ५५४१, ९८१९१६२६४८

e-mail : kathabimb@gmail.com
www.kathabimb.com

● **न्यूयॉर्क संपर्क** ●
नरेश मित्तल
(M) 845-304-2414
नमित सक्सेना
(M) 347-514-4222

● **शिकागो संपर्क** ●
तूलिका सक्सेना
(M) 224-875-0738

एक प्रति का मूल्य : २० रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु
२० रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.
(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)

कहानियां

।। ७ ।। कोई लौटा दे मेरे बीते हुए दिन - मालती जोशी
।। १३।। उड़ान - डॉ. अशोक भाटिया
।। १७।। एक और चेहरा - कुसुम भट्ट
।। २१।। ज़ीरो बटा सन्नाटा - नीता श्रीवास्तव
।। २७।। हत्यारिन - डॉ. पूरन सिंह
।। ३३।। अमल का स्टाइल है - सुषमा मुनींद्र

लघुकथाएं

।। १५।। स्त्री-शिक्षा / योगेंद्र शर्मा
।। १६।। अपहरण / ओमप्रकाश बजाज
।। २०।। अशुभ बहू / सेवा सदन प्रसाद
।। २६।। मॉर्निंग वाक / डॉ. नरेंद्र नाथ साहा
।। ३१।। भगवान / डॉ. रामनिवास "मानव"
।। ४२।। पांच पेड़ों की परंपरा / आनंद बिल्थरे

कविताएं / ग़ज़लें

।। १६।। दो गज़लें / राकेश "भ्रमर"
।। २६।। दोगला (कविता) / डॉ. सुरेश उजाला
।। ३७।। ग़ज़ल / चांद मुंगेरी
।। ४२।। ग़ज़ल / तबस्सुम "कशिश"
।। ४६।। कविता / आनंद तिवारी पौराणिक

स्तंभ

।। २ ।। "कुछ कही, कुछ अनकही"
।। ४ ।। लेटर बॉक्स
।। ४०।। "आमने-सामने" / सुषमा मुनींद्र
।। ४३।। "सागर-सीपी" / चंडीदत्त शुक्ल
।। ४७।। "औरतनामा" / डॉ. राजम पिल्लै
।। ४९।। पुस्तक-समीक्षा

●**"कथाबिंब" अब फेसबुक पर भी** ●
facebook.com/kathabimb
आवरण पर नामित रचनाकारों से निवेदन है कि
वे कृपया अपने नाम को "टैग" करें.

आवरण चित्र : चेरीब्लॉज़म की छटा, क्योटो, जापान
चित्रकार-द्वय : बेली पैन व नमित सक्सेना (अप्रैल २०१६)

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

कुछ कही, कुछ अनकही

इस अंक में, "लेटर बॉक्स" में डॉ. सतीश दुबे जी का पत्र छपा है. दुबे जी से पहली बार मैं लगभग १४ वर्ष पूर्व इंदौर उनके घर पर मिला था. वे व्हील चेयर पर अंदर से आये. पत्नी की मदद से तख़्त पर विराजे. उनकी पैर और हाथ की उंगलियां आर्थराइटिस से प्रभावित थीं. हाथ की उंगलियां बुरी तरह अंदर की तरफ़ मुड़ी हुई थीं. आज वे ७५ वर्ष के हैं. इस बीच क्षिप्रा में न जाने कितना पानी बहा होगा. सतीश जी की साहित्यिक सक्रियता में कोई अंतर नहीं आया. उपन्यास, कहानियां, लघुकथाएं और अभी उनका एक हाइकु संकलन आया है. उनके हस्तलिखित पत्र भी बराबर आते रहते हैं. मेरे लिए यह सोचना भी कठिन है कि वे कैसे क़लम पकड़ पाते हैं. यह उनकी जिजीविषा ही है जो उन्हें शक्ति और ऊर्जा प्रदान करती है. उम्र में मैं उनसे चार वर्ष छोटा हूं. ऐसा आदर्श पुरुष मेरे लिए "आदरणीय" शब्द का प्रयोग करे तो मुझे उनके चरणों में श्रद्धा-सुमन अर्पित करना चाहिए. मैं नत हूं.

इस अंक से एक नया स्तंभ प्रारंभ किया जा रहा है – "औरतनामा." इसकी रचनाकार हैं हमारी सहयोगी डॉ. राजम पिल्लै. सुधी पाठकों से निवेदन है कि अपनी प्रतिक्रिया से अवगत करायें. "कथाबिंब" कहानी प्रधान त्रैमासिक पत्रिका है. हमारी कोशिश रहती है कि प्रत्येक अंक के आवरण का चित्र भी कोई अलग कहानी कहता नज़र आये!

●

इस अंक में इस बार छः कहानियां हैं. कहानियों पर कुछ छुट-पुट -- यह हमारा सौभाग्य है कि वरिष्ठ साहित्यकार मालती जोशी का आशीर्वाद हमें यदा-कदा मिलता रहता है. चाहे एकल परिवार हो या संयुक्त परिवार, कभी-कभी ऐसी स्थितियां पैदा हो जाती हैं कि पति-पत्नी का साथ रहना असंभव हो जाता है. कहानी *"कोई लौटा दे मेरे बीते हुए दिन"* में अनु परिवार की ज़रूरतों के मद्देनज़र नौकरी करने पर मज़बूर है. सालों तक, न चाहते हुए भी उसे फ़ैमिली प्लानिंग करनी पड़ती है. उसके धैर्य का बांध तब टूट जाता है जब सास बच्चे न होने का दोषारोपण अनु पर ही लगाती है. अनु घर छोड़ देती है. अगली कहानी *"उड़ान"* (डॉ. अशोक भाटिया) का धरातल एक दम भिन्न है. जब तक आप लकीर के फकीर बने रहते हैं और एक ढर्रे पर चलते हैं सब ठीक रहता है. जहां आपने कुछ अलग सोचना शुरू किया तो वहीं आपके पंख नोंच लिये जाते हैं. *"एक और चेहरा"* "कथाबिंब" में लेखिका कुसुम भट्ट की पहली कहानी है. नायिका माला अक्सर अपने पति के व्यवहार को समझ नहीं पाती, उसे लगता है कि पति विक्रम के दो चेहरे हैं. माला के पिता को बच्चे और विक्रम भी पसंद नहीं करते इसलिए उन्हें वृद्धाश्रम में रखना पड़ा है. फ़ोन पर बीमारी की ख़बर सुन माला पिता से मिलने आश्रम हरिद्वार पहुंचती है. रास्ते में एक सहयात्री का चेहरा उसे जाना-पहचाना लगता है. लेकिन वह तो बहुत पहले कहीं दूर जा चुका था. अंक की चौथी कहानी की लेखिका नीता श्रीवास्तव (*"ज़ीरो बटा सन्नाटा"*) का भी नाम "कथाबिंब" के पाठकों के लिए नया है. कहानी की नायिका ज़ेलर की मां है. ज़ेल के अंदर ही ज़ेलर का बंगला है. बंगले के अहाते में झाड़-झंकाड़ साफ़ करने के लिए दो नये पंछी (क़ैदी) बंगले पर आते हैं. इनमें से एक -"ज़ीरो बटा सन्नाटा," किसी छोटे से अपराध में फंस गया था और उसे केवल एक सप्ताह की सज़ा हुई थी. पूछने पर जब मालूम पड़ा कि वह घर पर कुछ ख़ास नहीं करता तो नायिका उसे काम करने की सलाह देती है. ऐसा काम जिससे कुछ पैसे मिलें और मां की मदद हो सके. इस एक नेक सलाह से उसका जीवन पूरी तरह बदल जाता है. डॉ. पूरन सिंह की *"हत्यारिन"* एक सीधे-सादे ग्रामीण आदमी की कहानी है जो सारा जीवन छल-कपट से दूर रहता है. हर क्षण पत्नी और बच्चे उसे प्रताड़ित करते रहते हैं. वृद्धावस्था में कैंसर के कारण वह बोल नहीं पाता. उसे घर के एक छोटे से कमरे में डाल दिया जाता है जहां अंततः उसकी मृत्यु हो जाती है लेकिन चौबीस घंटे तक किसी घर वाले को ख़बर नहीं लगती. भतीजे समवयस्क रामवीर को चाची के व्यवहार के बारे में सब कुछ मालूम था. उसकी सोच के अनुसार चाचा की हत्या हुई थी! सुषमा मुनींद्र की *"अमल का स्टाइल है"* दो युवा लड़कियों अमल और आश्वस्ति की कहानी है जो साथ-साथ पढ़ती हैं और किराये के मकान में साथ रहती हैं. दोनों द्वितीय वर्ष मेडिकल की छात्राएं हैं. आश्वस्ति सामान्य परिवार से है जबकि अमल के माता-पिता बहुत अमीर हैं लेकिन अलग हो चुके हैं. यह बात अमल को हमेशा सालती रहती है और इसी कारण वह ऊलजलूल व्यवहार करती है.

●

भारत देश का अधिकांश गांवों में रहता है. देश बदल अवश्य रहा है लेकिन कछुआ गति से. इससे विलग "इंडिया" है, बड़े-बड़े शहरों में रहने वाले लोग, जिनका जीवन स्तर थोड़ा बेहतर है. और अब एक नये वर्ग का प्रादुर्भाव हुआ है भारत और इंडिया से भिन्न – "अल्ट्रा-इंडिया," यानी सारी सुख-सुविधाओं से संपन्न लोग –नवकुबेर. आप एयरपोर्ट पर जाइए, होटलों में जाइए, मालों में जाइए, सब जगह भीड़ ही भीड़. होटलों में जगह मिलने के लिए आपको इंतज़ार करना पड़ेगा. तीन-चार लोगों के भोजन का बिल ४-५ हज़ार रुपये. कारों की पार्किंग के लिए जगह मिलना मुश्किल है. दिल्ली में

दो बार "ऑड-ईवेन" का फ़ॉर्मूला लागू किया गया. कोई फ़र्क नहीं पड़ा. लोगों ने दो कारें रखना शुरू कर दीं – एक का नंबर सम और दूसरे का विषम! न प्रदूषण कम हुआ न ट्रैफ़िक जैम. अण्णा हज़ारे के आंदोलन का सबसे अधिक फ़ायदा अरविंद केजरीवाल को हुआ है. आज कोई नहीं पूछता कि जन-लोकपाल बिल का क्या हुआ. शीला दीक्षित पर केजरीवाल क्यों नहीं कार्यवाही करते. "आप" ने अपनी झाड़ू कहां छुपा कर रखी है? देश के अन्य मुख्यमंत्रियों से केजरीवाल किस तरह भिन्न हैं? "आप" के पास बहुमत है, आप कुछ भी कर सकते हैं. सभी विधायकों की तनख़्वाह दुगनी कर दी है. दिल्ली के मुख्यमंत्री का वेतन राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री से ड्योढ़ा! सभी नियमों की अनदेखी करके २१ विधानसभा सचिवों की नियुक्ति, जिन्हें मंत्रियों की सारी सुविधाएं मिलेंगी. यह इसलिए कि "दुखी" विधायक छोड़कर कहीं न चले जायें. नियमानुसार ७० सदस्यों की विधानसभा में १० प्र. श. यानी मात्र १० मंत्री ही हो सकते हैं. केजरीवाल तो बहुत कुछ करना चाहते हैं किंतु दिल्ली को पूर्ण राज्य का दर्ज़ा नहीं प्राप्त है! कभी जंग के साथ जंग और कभी मोदी आड़े आ जाते हैं. वे करें भी तो क्या करें ? हर रोज़ एक नयी नौटंकी.

असम, प. बंगाल, केरल, तमिलनाडु और पांडुचैरी में हुए चुनावों के परिणाम काफ़ी कुछ अपेक्षित रहे. प. बंगाल में "ममता दीदी" का और असम में राजग का आना तय था. किंतु तमिलनाडु में जयललिता दोबारा जीत जायेंगी ऐसा नहीं लग रहा था. कॉन्ग्रेस के "हाथ" से दो राज्य असम और केरल चले गये. अब एक कर्नाटक ही बड़ा राज्य बचा है. डूबते ज़हाज को एक-एक करके लोग छोड़ते जा रहे हैं, छत्तीसगढ़ में अजीत जोगी ने अलग पार्टी बना ली. मुंबई के गुरूदास कामत ने भी सन्यास की घोषणा कर दी है. डूबते ज़हाज को कैसे किनारे लगाया जाये इस पर मंथन हो रहा है. प्रियंका को आगे लाया जाये या युवराज को? दुविधा यह है कि यदि राहुल गांधी पार्टी अध्यक्ष बनाये गये तो कहीं कुछ और लोग किनारा न कर लें. इधर कुंआ उधर खाई! राज्य सभा के चुनावों में भी कॉन्ग्रेस को नुकसान हुआ. कमलनाथ को पंजाब का प्रभारी बनाना भी उल्टा पड़ गया. दूसरे दिन निर्णय वापस ले लिया गया.

गनीमत है कि इस वर्ष किसी प्रांत में चुनाव नहीं होने हैं. बहुत संभव है कि दो वर्ष बाद अब सरकार महंगाई, सूखा, आतंकवाद, नक्सलवाद और इसी तरह की "भारत" में रहने वाले बहुसंख्य लोगों की मूलभूत समस्याओं से जूझने का समय निकाल पाये! किसान से लेकर आम आदमी प्रार्थना कर रहा है कि कब बादल घिरें और कब "सामान्य से अधिक" बारिश हो! आये दिन हमारे सैनिक और अर्धसैनिक जवान घुसपैठियों को मार गिराते हैं या अन्य किसी दुर्घटना में बिना युद्ध हुए "शहीद" होते रहते हैं. समाचार-पत्रों में रोज़ एक कोने में फ़ोटो के साथ नाम छपे होते हैं. इन शहीदों के लिए सरकार को कुछ अलग से करना चाहिए. वाहनों की दुर्घटनाओं में, आंदोलनों में लोग ट्रक जला देते हैं, दुकानों, घरों को आग लगा देते हैं. ऐसे अपराधों को घोरतम अपराधों में गिना जाना चाहिए. उच्चतम न्यायालय और सरकार तुरंत नियम बनाये. अभी कुछ दिन पूर्व मथुरा में जो हुआ वह केंद्र और राज्य सरकार दोनों का "इंटेलीज़ेन्स फ़ेल्योर" है. बीचोंबीच शहर में इतने बड़े इलाके में छावनी बना कर तीन-चार साल से जय गुरुदेव के समर्थक छोटे-छोटे बच्चों को हथियार चलाने का प्रशिक्षण देते रहे और देशद्रोह का पाठ पढ़ाते रहे. ऐसा कैसे संभव हो सका? यदि मथुरा में ऐसा हो सकता है तो पूरे देश में कहीं पर भी हो सकता है. क़ानून और व्यवस्था को मात्र राज्यों का विषय कहकर केंद्र मुंह नहीं मोड़ सकता. न ही राज्य केंद्र को दोष दे कर बच सकते हैं. हमें किसी नयी प्रणाली या मैकेनिज़्म के बारे में सोचना होगा जो और अधिक प्रभावी और कारगर हो.

देश हो या विदेश, चुनाव हों या न हों हमारे प्रचारक प्रधानमंत्री हमेशा प्रचार के "मोड" में रहते हैं. पांच देशों के दौरे के बाद अंत में मोदी जी ने अमेरिका की सीनेट में, लगभग ४५ मिनट का भाषण दिया. भाषण के दौरान ६२ बार तालियां बजीं और उपस्थित लोगों ने ९ बार खड़े हो कर उनका अभिनंदन किया. विदेश-यात्रा से लौट कर आये तो सरकार के दो वर्ष पूरे होने पर दिल्ली में, इंडिया गेट के पास एक भव्य कार्यक्रम किया गया. फिर सहारनपुर में बड़ी भारी रैली आयोजित की गयी. उत्तर प्रदेश, पंजाब और गुजरात का चुनाव अभी ८ महीने दूर है लेकिन लगातार रैलियां करने की योजना है. हमें समझ में नहीं आता कि हर रैली में इतनी भीड़ कहां से आती है और आयोजन के लिए धन कहां से आता है?

●

बिहार में हत्या, अपहरण और फिरौती की घटनाएं इधर बहुत बढ़ी हैं. चुनाव के दौरान जो असामाजिक तत्व चुप थे वे पुनः सक्रिय हो गये हैं. शिक्षा की दुर्दुशा की ख़बरें भी दिल दहलाने वाली हैं. पिछले वर्ष समाचार-पत्रों और टीवी पर एक फ़ोटो दिखायी जा रही थी कैसे चार मंज़िल की कॉलेज़ की बिल्डिंग पर अनेक युवा परीक्षा देने वाले छात्रों को नक़ल करा रहे थे. इस बार बारहवीं के टॉपर्स ने तो क़माल ही कर दिया. रिज़ल्ट के बाद उनसे साधारण से प्रश्न पूछे गये तो वे बगलें झांकने लगे. यह हाल केवल बिहार के एक कॉलेज़ या संस्था का नहीं है. पैसे लेकर पास कराने का धंधा पूरे देश में न जाने कबसे फल-फूल रहा है !

अरविंद

लेटर-बॉक्स

▶▶ 'कथाबिंब' का जनवरी-मार्च '१६ अंक, अंशु जौहरी की कहानी 'सिर्फ़ आधे घंटे के लिए' अंक की उपलब्धि है. भाषा, दृष्टि, कथानक सभी कसौटियों पर सर्वोत्तम, कर्तव्य और भावना का अद्‌भुत संतुलन, बधाई. लक्ष्मी रानी लाल की कहानी 'मलबों के ढेर से' संयमित कथा है. प्रेम में संयम, स्मृति के आवेग पर संयम, संयम की सकारात्मक प्रयुक्ति. पूनम मनु की कहानी 'निषिद्ध पथ के राही' के निष्कर्ष में आत्महत्या का विरोध है. सुभाष रंजन की कहानी 'बिरवे' काकी मां की व्यथा कथा है. किंतु यह केवल काकी मां की क़िस्सागोई नहीं है बल्कि घर-घर का सत्य है. संबंधों में स्वार्थ का घुन लग गया है. त्याग की क़ीमत नहीं है, त्याग का हासिल नहीं है. आमने-सामने में डॉ. राजम पिल्लै ने बहुत गरिमा के साथ आत्मकथा कही है. आत्म प्रशंसा नहीं है. उनकी प्रतिभा को नमन. उनसे स्त्री विमर्श को नया उत्कर्ष मिलेगा. फूलचंद मानव का नाम बचपन से पढ़ता आ रहा था. उनके साक्षात्कार के लिए अशोक भाटिया ही की दरकार थी. 'सागर-सीपी' में अनुवाद का ग्राफ़ इससे ऊपर नहीं गया. सविता बजाज ने विवेक सम्मत विदाई ली. सुरेश कुशवाहा की लघुकथा में बिटिया के प्रश्न राजनीति की बखिया उधेड़ने वाले हैं. राधेश्याम पाठक की लघुकथा 'आतंक' का दिशाबोधक समाधान है. डॉ. कुंवर प्रेमिल की लघुकथा 'मां' पर सुंदर कविता है.

- *हितेश व्यास*

६-ए/७०५, कल्पतरु सेरेनिटी, नवरत्न मंगल कार्यालय के सामने, महादेव नगर, मांजरी, पुणे-४१२३०७.
मो. : ९४६०८५३७३६

▶▶ 'कथाबिंब' का जनवरी-मार्च २०१६ का अंक प्राप्त हुआ. पत्रिका में 'कुछ कही, कुछ अनकही' में वर्तमान व्यवस्था पर आपकी बेवाक टिप्पणी बेहद पसंद आयी है. पत्रिका कहानी साहित्य को प्रमुखता से प्रकाशित करती है. उच्च कोटि की कहानियां ज़्यादातर 'कथाबिंब' में पढ़ने को मिलती हैं. अन्य रचनाएं भी बेहतर हैं. सहयोग के लिए आभारी हूं. मंगलकामनाएं सहित.

- *रामेश्वर प्रसाद गुप्ता 'इंदु'*

बड़ागांव, झांसी-२८४१२१ (उ. प्र.)

▶▶ १३३वां अंक प्राप्त हुआ. मैं अपनी प्रसन्नता और आपके स्नेह को शब्दों में नहीं पिरो सकता. सच कहा है कि हम छोटी-छोटी ख़ुशियों को बड़ी ख़ुशी की चाह में नज़र अंदाज़ कर देते हैं. परिणाम बड़ी ख़ुशी हमें मिलती नहीं और छोटी ख़ुशी से भी हम महरूम रह जाते हैं. अगर छोटे-छोटे प्रयासों को हम सार्थक बल दें तो मंज़िल क़दमों में आ धमकती है.

आपके अब तक के इस निरंतर प्रयास ने जो नवोदितों के छोटे-छोटे प्रयासों को प्रोत्साहित किया है वह वाक़ई स्तुत्य है. आज की दौड़ में 'कथाबिंब' ही एक ऐसी पत्रिका है जो नये-पुराने सभी को साथ लेकर संघर्षशील है.

संपादकीय सदैव की तरह बौद्धिकता से पूर्ण है. कथाओं का चयन बड़ी सावधानी से किया है. जिससे रु-ब-रु होकर संतोष मिलता है. ग़ज़लें एवं लघुकथाएं भी पठनीय हैं. आपको पुन: एक बार धन्यवाद. इतना कहते हुए कि इस सफ़र में परेशानी बहुत है मगर आप अपने हौसले पर इसे कभी मत हावी होने दें. बल्कि परेशानी को बता दें कि मेरा हौसला बहुत बड़ा है. हम सबका साथ, हम सबका हाथ आपके लिए. शुभकामनाओं के साथ.

– *चांद मुंगेरी*

२सी/१-१४१, बोकारो, स्टील सिटी-८२७००१.
मो. : ९२०४०९३०४०

▶▶ 'कथाबिंब' का जनवरी-मार्च '१६ अंक मिला. ज़रूरी लिखना यह है कि 'कथाबिंब' की रौनक बरकरार है, अगर कहूं कि पहले से और अधिक मज़बूत और ख़ूबसूरत, रौनकयाब हुई है पत्रिका तो ग़लत न होगा.

▸▸ *आदरणीय अरविंदजी !*

आदरणीय संबोधन को अन्यथा नहीं लीजिएगा. वस्तुतः व्यक्ति वय के आधार पर नहीं निष्ठा के साथ अपने विशेष अवदान के लिए स्वतः यह दर्ज़ा प्राप्त कर लेता है. 'कथाबिंब' तथा साहित्य के उन्नयन हेतु आपकी निरंतर निस्पृह साधना के निश्छल और निस्पृह चेहरे की आभा को मैं वर्षों से इसी रूप में देखता आ रहा हूं. 'कथाबिंब' के माध्यम से आपने पुरानी, समकालीन ही नहीं नयी पीढ़ी को विशेष रूप से पहचान देकर साहित्य के प्रति उसकी ललक को प्रोत्साहित किया है. मेरे इस तथ्य की पुष्टि पत्रिका के प्रत्येक नये अंक से की जा सकती है. कहने की आवश्यकता नहीं यह सिलसिला ज़ारी रहेगा इसीलिए इसे आपने अपने जीवन का एक हिस्सा तथा ऊर्जा का पर्याय माना है.

अंगुलियां और दिमाग़ साथ दे रहा है, इसलिए सतत लेखन चलता रहे, यह अच्छा है. पृष्ठभूमि में आप जैसे मित्रों का संबल और शक्ति है.

– डॉ. सतीश दुबे

७६६, सुदामा नगर, इंदौर-४५२००९.
मो. : ९६१७५९७२११.

आप सैंतीस वर्षों से अपने इस यज्ञ में निरंतर लगे हुए हैं. शायद कम पत्रिकाएं हैं जो इस यात्रा में आपके साथ हैं.

आपने हज़ारों शब्दकर्मियों को 'कथाबिंब' से जोड़ा और अपना मंच प्रदान किया. अपना एक शेर याद आता है — **'कौन फूंके है आज घर अपना,**
लोग यूं तो कबीर होते हैं.'

इस अंक में सारी स्तरीय रचनाओं के साथ सविता जी के विषय में पढ़कर काफ़ी दुख हुआ. उनके माध्यम से सिनेजगत की बहुत सारी ऐसी बातों को हम जान पाते थे जो हम तक नहीं आती थीं. इस अंक के 'सागर-सीपी' स्तंभ में फूलचंद जी ने अनुवाद को लेकर जो बात कही है वह बहुत ही शोचनीय है. सच है कि राघव जी ने शेक्सपीयर का इतना अनुवाद किया है यह बहुतों के लिए आश्चर्य की बात है. अनुवाद सच में बहुत उपेक्षित कार्य रहा है लेखन उद्योग में...

कलकत्ता में सुश्री सुशील गुप्त थीं. कलकत्ता दूरदर्शन में निदेशक पद पर. एक अच्छी कवयित्री, कथाकार थीं. अपनी इतनी व्यस्तता के बावजूद उन्होंने सौ से अधिक बांग्ला की उत्तम साहित्यिक पुस्तकों का अनुवाद किया. एक राष्ट्रीय पुस्तकालय में कन्नड़ के कुमार अप्पा थे, जिन्होंने बांग्ला से पचास से ऊपर पुस्तकों का कन्नड़ में अनुवाद किया था. आज ये लोग विस्मृति की खाई में डूब गये हैं. अब लोगों की स्मृति में भी ये लोग नहीं हैं...

- डॉ. सेराज खान बातिश

३–बी, बंगाली शाह वारसी लेन, दूसरा तल्ला, फ्लैट नं. ४, खिदिरपुर, कोलकाता-७०००२३.
मो. : ९३३९८९७९८

▸▸ 'कथाबिंब' नियमित मिल रही है. जन-मार्च का यह अंक काफ़ी अच्छा लगा. महिला लेखिकाओं की कहानियां अधिक हैं, जो स्त्री-मनोविज्ञान और स्त्री विमर्श की दृष्टि से अच्छी रची गयी हैं. अंशु जौहरी की 'सिर्फ़ आधे घंटे के लिए' कहानी सभी दृष्टियों से अति उत्तम है. भाषिक संरचना, स्त्री मनोविज्ञान, सांस्कृतिक संघर्ष, अमेरिका जैसे देशों के अति भौतिक-तकनीकी भरे जीवन में मानव संवेदनाओं के टकराव इत्यादि बारीक बुनावट के साथ प्रस्तुत हुए हैं. बहुत अच्छा लगा, पुस्तक समीक्षाओं में पुस्तकों के परिचय के साथ-साथ समीक्षकों की रचनात्मक प्रतिभा से भी परिचय हुआ. सभी सराहनीय है.

- दिवा भट्ट

'अवलोकन', ब्राइटन कॉर्नर, अल्मोड़ा (उत्तराखंड)

▸▸ जनवरी-मार्च २०१६ की चारों कहानियां एवं चारों लघुकथाएं तथा सभी कविताएं / ग़ज़लें मन को छू लेती हैं, स्तरीय हैं और बहुत दिनों तक अभिव्यक्तियां हृदय को कुरेदती रहेंगी. आपके संपादन को साधुवाद. हां इतना अवश्य लेखनी बद्ध करना चाहूंगा कि डॉ. सुभाष रंजन की 'बिरवे' तथा राधेश्याम पाठक 'उत्तम' की 'कोबरा हार गया' ने सामयिकी को कथानक बना कर मन को झकझोर दिया. पुनः साधुवाद इन लेखकों को भी, संपादन को भी और त्रैमासिकी 'कथाबिंब' को भी.

हां, इतना अवश्य है कि लेखन सरल हो, सौंदर्यमय हो, सामयिकी हो और अत्याधिक मनमोहक हो तो निःसंदेह 'सोने में सुहागा' का काम करने में अवश्य ही सफल हो पाता है.

एक बात और 'दुरूह जटिल लेखन कभी राह नहीं दिखाता' भी इस अंक की विशेषता है जिसे संपादन में अवश्य ही ध्यान रखने पर बल देना चाहिए.

– डॉ. मदन मोहन वर्मा
एस.बी.९७, शास्त्री नगर, गाजियाबाद-२०१००२
मो.: ९८६८६४६०२१

▸▸ 'कथाबिंब' का जनवरी-मार्च २०१६ का अंक मिला. पत्रिका के आवरण पृष्ठ पर देश की अनुपम धरोहर को पाठकों तक पहुंचाने का जो क्रम आपने प्रारंभ किया है वह प्रशंसनीय है.

इस अंक में कहानियों और लघुकथाओं के बीच संख्यात्मक संतुलन विस्मित कर गया. आठों रचनाओं का चयन उत्तम बन पड़ा है. आज के मशीनीकृत जीवन में दांपत्य में जो रेगिस्तान पसर रहा है और स्त्री पक्ष को जो उपेक्षा सहनी पड़ रही है उसका बहुत ही गहरा चित्रण कहानी 'सिर्फ़ आधे घंटे के लिए' में है. कहानी लंबी होते हुए भी बांधे रखती है. पुरुष को इस बात की चिंता तो करनी ही होगी कि स्त्री की भी अपनी कुछ नैसर्गिक आवश्यकताएं हैं. दो युवा ज़िंदगियों को नकारात्मकता की ओर बढ़ने से रोककर सकारात्मक मार्ग स्वीकार करने की प्रेरणा आदर्शवादी कहानी 'मलबों के ढेर से' में है. कहानी का शीर्षक ठीक नहीं लगा. 'निषिद्ध पथ के राही' कहानी की मनोवैज्ञानिक ज़मीन बहुत मज़बूत लगी और वह प्रतिकूल स्थितियों से घबराकर पलायन करने की बढ़ती प्रवृत्ति को नया सोच देती है. मैंने कथाकार पूनम जी को दिशा बोधक कहानी के लिए बधाई दी है. 'बिरवे' कहानी में कहन तो है, लेकिन मुख्य महिला पात्र के बंगाली भाषा के संवादों ने कथारस के परिसंवादों में बाधा-सी उत्पन्न की है. कथावस्तु पुरानी होते हुए भी कथाकार का ट्रीटमेंट नया-सा लगा. कहानी का अंत प्रभावित कर गया. चारों कथाकारों और चारों लघुकथाकारों को बधाई. 'आमने-सामने' और 'सागर सीपी' स्तंभ अपनी गरिमा के अनुकुल हैं. डॉ. राजम पिल्लै को मैंने सुना है. वे विदुषी साहित्यकार और दमदार वक्ता हैं. उनके बारे में यह स्तंभ अधिक बतायेगा, ऐसी उम्मीद थी. प्रो. फूलचंद मानव के कृतित्व से परिचित कराने में डॉ. अशोक भाटिया सफल रहे हैं. कविताओं का चयन बढ़िया है. वरिष्ठ कवि सदाशिव कौतुक की 'औरत' कविता में औरत की जीवटता को मजबूती के साथ उकेरा गया है. 'बाइस्कोप' में आदरणीय सविता बजाज ने शफ़ीक अहमद साहब की बहुआयामी शख्सियत से बख़ूबी परिचित कराया है. ऐसे संकल्पशील लोग सिने-जगत में अब गिने-चुने ही रह गये हैं.

– युगेश शर्मा
'व्यंकटेश कीर्ति', ११ सौम्या एन्क्लेव एक्स., सियाराम कॉलोनी, चूनाभट्टी, भोपाल-४६२०१६.
मो. : ९४०७२७८९६५.

▸▸ 'कथाबिंब' के जनवरी-मार्च अंक के 'लेटर-बॉक्स' में आदरणीय सविता बजाज जी का पत्र पढ़ा. नैराश्यपूर्ण पत्र पढ़कर मन में कहीं कुछ चटक गया सा लगा. हम सब न जाने कितने समय से आपके साक्षात्कार 'कथाबिंब' में पढ़-पढ़कर आनंद लेते रहे हैं... और अब आगे न पाकर उनसे वंचित रहेंगे, सहसा विश्वास नहीं होता. आदमी कहीं एक जगह आकर कितना कमज़ोर पड़ जाता है यह आपके पत्र से साबित हो गया है. यह ज़िंदगी किसी मायने में किसी रणक्षेत्र से कम तो नहीं है. जहां हमें बिना किसी हथियार के लड़ाई लड़नी पड़ती है. वह भी उन अदृश्यों से जो दृश्यमान नहीं होते. अपनी भयानक शक्लों में हमें बेर-सबेर एकदम कमज़ोर बना डालते हैं.

कहानीकार बहुत जीवट होता है. वह अपने मज़बूत पात्रों के साथ जीवन जी लेता है. उसकी अपनी दुनियां इन्हीं पात्रों उनके कथानकों के बीच सामंजस्य बना कर चलती है. पत्र में लिखा है कि अरविंद जी ने मदद करनी चाही, यह उनका कर्त्तव्य था... और आपने मदद नहीं ली, यह कहीं न कहीं आपका स्वाभिमान था. जिसकी रक्षा आपने की, आत्मसंतोषी स्थितिप्रज्ञ बनकर.

हम स्थितियों के दास न बनें, ज़रूर यह कोशिश करते रहें. मरना-जीना सभी के साथ लगा रहता है. 'आया है तो जायेगा. राजा-रंक-फकीर...' पर जितना भी यहां रहें, जोशीले बनकर रहें. आशावान बनकर रहें. 'कथाबिंब' से आपका पुराना नाता रहा है. इसलिए आप हम सबसे भी उसी तरह जुड़ी हैं. आप अपनी दृढ़ता बनाये रखें और ज़िंदगी की लड़ाई मज़बूती से फतह करें. अरविंद जी और आप दोनों के ही किरदार को मेरा नमन है. आप जब भी कभी कष्ट में हों तो 'कथाबिंब' के जरिए हम सबसे शेयर करिए.

– डॉ. कुंवर प्रेमिल
८, विजयनगर, जबलपुर-४८२००२ (म. प्र.)
मो. : ९३०१८२२७८२

कहानी

कोई लौटा दे मेरे बीते हुए दिन

मालती जोशी

'पारुल के बेटी हुई है.' पापाजी ने किचन में आकर सूचना दी.

'चलो भगवान का लाख-लाख शुक्र है कि सब कुछ अच्छे से निपट गया.' मम्मी जी ने आटा सने हाथों से प्रणाम करते हुए कहा — 'एक बेटा, एक बेटी, चलो कोटा पूरा हो गया. अब फुर्सत.'

'मम्मी, गुड़िया का नाम मैं रखूंगी.' काजल ने मचलते हुए कहा — 'पिछली बार उन लोगों ने अपनी मनमर्जी कर ली. हमें चान्स ही नहीं दिया.'

'देखो बेटा, उनकी बिटिया है. वे जो चाहे करें. वैसे तुमसे पूछें तो तुम ज़रूर बताना. पर नामकरण का अधिकार बुआ का ही होता है.'

'हमें पता नहीं यह मौक़ा कब मिलेगा. काजल ने मुंह फुलाकर मेरी ओर देखते हुए कहा. मम्मी जी एकदम उखड़ गयीं — चुप कर समझती बूझती कुछ है नहीं. बेबात की बात लेकर बैठ जाती है. यह नहीं होता कि खाने का वक़्त हो रहा है तो, प्लेटें ही लगवा दे.'

'मैं प्लेटें पोंछ रही थी.' काजल ने लगभग मेरे हाथ से प्लेटें छीन ही लीं और बाहर चली गयी. उसके चलने के अंदाज़ से ही पता चल रहा था कि वह ग़ुस्सा हो गयी है. अब देर तक मुंह फुलाये बैठी रहेगी. मम्मी जी उसे मनाती रहेंगी. खाने का कचरा हो जायेगा.

मम्मी जी सचमुच उसे मनाने पहुंच गयी थीं — 'चल जल्दी से खाना खा ले. फिर अपन नर्सिंग होम चलते हैं. तू न अपने जीजाजी को पहले से ही जता देना. फिर वो सब संभाल लेंगे.'

मैंने सोचा, बुआ न बन पाने का काजल को दु:ख है. मामा बनने की मेरे भैया को बेसब्री है. नानी न बन पाने के कारण मेरी मां चिंता में घुली जा रही हैं. जब जाती हूं तब डॉक्टरों के यहां, पंडितों के यहां चलने का आग्रह करती हैं. पर मम्मी जी को, मेरी सास को कुछ नहीं समझता. क्या उन्हें दादी बनने की लालसा नहीं है? या ये सब कुछ उनकी मिली भगत से हो रहा है.

रात के नौ बज रहे थे. फिर भी सब लोग पारुल की बेटी को देखने के लिए चले गये कि प्रायवेट अस्पतालों में समय की पाबंदी नहीं होती. सारथी बनकर इन्हें तो साथ जाना ही था. पर थकान का बहाना कर मैं नहीं गयी. ऊपर कमरे में आकर लेट गयी.

कोई साढ़े दस के बाद ये लोग लौटे. कपड़े बदलते हुए ये गुड़िया की, नर्सिंग होम की व्यवस्था की, पारुल की सास की तारीफ़ करते रहे. मैं चुपचाप लेटी रही. मैंने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी.

बत्ती बुझाकर वे जब लेटने को हुए तब मैंने एकाएक कहा — 'पारुल की शादी हमसे, दो साल बाद हुई है और वह दो बच्चों की मां बन गयी है.'

ये एकदम चौंके. उनके लिए मेरा यह हमला एकदम अप्रत्याशित था. अपना बचाव-सा करते हुए बोले — 'उसके पास कामधाम कुछ है नहीं. बैठे-बैठे बस बच्चे पैदा कर रही है.'

'और हमारे पास काम ही काम है. इसलिए बच्चा पैदा करने की फुर्सत नहीं है.'

'ये कैसी बातें कर रही हो? कोई सुनेगा तो सोचेगा तुम्हें पारुल से ईर्ष्या हो रही है?'

'क्या मुझे उतना-सा भी हक़ नहीं है.'

'कम ऑन यार. डोंट बी एबसर्ड. हम लोगों ने एक निर्णय लिया है.'

'हम लोगों ने नहीं, आपने. या शायद आपके घरवालों ने भी. पहले मकान की किश्तें चुकाने की बात थी. फिर पारुल की शादी का लोन आ गया. और अब शायद काजल की शादी की प्लानिंग होगी. मुझे बताइए हम अपनी ज़िंदगी कब जियेंगे?'

'क्यों? हम लोग अच्छी ख़ासी ज़िंदगी जी तो रहे हैं. एक बच्चा ही तो नहीं है. बाक़ी क्या दु:ख है तुम्हें?'

'वाह! क्या ज़िंदगी है. इस कमरे में सिमट कर रह गयी हूं मैं. इसके बाहर मेरी कोई दुनिया ही नहीं है. रसोई में तुम्हारी मां का एकाधिकार है. अपनी पसंद की चाय भी बनाने जाती हूं तो वहां जैसे भूचाल आ जाता है. ड्राइंग रूम पर पापाजी का कब्ज़ा है. किसी को घर बुलायें भी तो कहां बिठायें समझ में नहीं आता और किसी को बुला नहीं सकते तो किसी के घर जाते भी नहीं हैं. संकोच होता है. हम लोग पिक्चर नहीं जा सकते क्योंकि घर में कुंआरी बहनें हैं. उन्हें हर पिक्चर में साथ नहीं ले जा सकते. और अकेले जाना तो महापाप होगा. मैं अपने लिए एक रूमाल तक नहीं ख़रीद सकती. घर में बराबरी की ननदे हैं. जो कुछ भी ख़रीदना है, सबके लिए ख़रीदना होगा. हम कहीं घूमने नहीं जा सकते क्योंकि घर का बजट बिगड़ता है. घर से दफ़्तर और दफ़्तर से घर, बस यही ज़िंदगी रह गयी है. क़सम से बोर हो गयी हूं मैं. कम से कम एक बच्चा ही दे दो. कुछ तो मोनोटोनी टूटे.'

'ये तुम्हें क्या हो गया है आज? यू आर मेकिंग मी फ़ील गिल्टी.'

'रियली?' यह एक ही शब्द मैंने कुछ इस अंदाज़ से कहा कि वे तिलमिला गये. एकदम उठ कर बैठ गये और निर्णायक स्वर में बोले — तुम मेरा मज़ाक बना रही हो न. ठीक है. तो कान खोलकर सुन लो, काजल की शादी तक इस विषय पर कोई बात नहीं होगी. ओके? नाऊ गुड नाइट.'

'गुड नाइट' कहकर उन्होंने तो करवट बदल ली. पर मैं सो नहीं सकी. मेरे लिए वह बड़ी ही बैड नाइट थी.

□

पारुल के यहां बेटी का जश्न बड़ी धूमधाम से मनाया गया. बाक़ायदा कार्ड वग़ैरह बांटे गये. हम लोग भी ढेरों सामान के साथ वहां पहुंचे थे. रास्ते भर मम्मी पापाजी पारुल के सास-ससुर का गुणगान करते रहे कि कितने सुलझे हुए लोग हैं. बेटी का जन्मोत्सव भी उसी शान के

वरिष्ठ साहित्यकार, 'कथाबिंब' की हितैषी एवं नियमित लेखिका.

साथ मना रहे हैं. काजल ख़ुश थी कि जीजाजी ने उसका अनुरोध मान लिया है. गुड़िया के नामकरण का ज़िम्मा उसे ही सौंपा गया है.

मैं पूरे रास्ते चुप थी. पर किसी ने भी मेरी चुप्पी को लक्ष्य नहीं किया. इस घर में मुझे इतनी अहमियत कभी दी ही नहीं गयी. कभी-कभी लगता है ये लोग मेरा अस्तित्व ही भूले हुए हैं. उनके लिए तो मैं बस एक चलता-फिरता एटीएम हूं.

पारुल का घर-आंगन मेहमानों से भरा हुआ था. डीजे भी बज रहा ता और ढोलक भी. सजी–धजी पारुल गुड़िया को गोद में लिये बैठी थी. मैंने गुड़िया को गोद में लेना चाहा तो किसी ने अधबीच में ही उसे लपक लिया — 'गुड़िया रानी! नेक हमारे पास भी तो आओ.' मैंने देखा वो पारुल की चाची सास थीं. दोनों भाइयों के घर अगल-बग़ल एक ही कंपाउंड में बने हुए थे. रोज़ का आना–जाना था और ये ऐसा जता रही हैं जैसे बच्चे को पहली बार गोद में ले रही हैं.

इस बात का मर्म तुरंत मेरी समझ में आ गया. मन एकदम खट्टा हो गया. उसके बाद मैं एक जगह जाकर जो बैठी तो उठी ही नहीं. पर वहां भी किसी ने मुझे चैन से बैठने नहीं दिया. तरह-तरह के वाक्य मेरे कानों से टकराते रहे.

'कार्तिक! मामी से कहो, हमारे साथ खेलने के लिए एक छोटा भाई जल्दी से लाइए.'

'अनु! तुम कब मिठाई खिला रही हो भाई! देखो पारुल पीछे से आकर आगे निकल गयी.'

'समधिन! अब आपके यहां भी बधावा बजना चाहिए. कब से इंतज़ार कर रहे हैं.'

पारुल की सास ने तो मम्मीजी को एकदम घेर ही लिया— 'बहनजी! अब अनु को सीरियसली इस बारे में सोचना चाहिए. पांच साल बहुत होते हैं.'

'अरे भई, हमने तो कई बार कहा कि हमारे हाथ-पैर चल रहे हैं तब तक एक दो जितने करने हैं, कर लो. एक दो से ज़्यादा तो वैसे भी आजकल कोई करता नहीं है. पर हमारी कोई सुने तब न. आप तो जानती हैं बच्चे होते हैं तो आज़ादी में थोड़ा खलल पड़ता ही है.' इतनी देर से लोग मुझे टोक रहे थे, कोंच रहे थे. मन एकदम लहूलुहान हो गया था. पर मम्मी जी की बात सुनकर तो मेरे तन-बदन में आग ही लग गयी. इतना झूठ भी कोई बोल सकता है?'

चलते समय मैंने पारुल की सास के पैर छुये तो उन्होंने मुझे गले से लगा लिया. बोली — 'बेटा, मैं तुम्हारी मां के समान हूं. मेरी बात ध्यान से सुनो. भगवान के राज में ज़्यादा दखलंदाजी नहीं करते नहीं तो वो नाराज़ हो जाते हैं. वैसे भी हर चीज़ समय से ही अच्छी लगती है. बहुत देर करोगी तो समस्या हो सकती है. यह ज़रूरी नहीं है कि जब हम चाहेंगे बच्चा हो ही जायेगा. तो मेरी बात पर ग़ौर करो, समझीं?'

मैंने विनम्रता की प्रतिमूर्ति बन कर कहा — 'चाचीजी, मैं जानती हूं आप जो कुछ कह रही हैं, मेरे भले के लिए ही कह रही हैं. पर क्या करूं, मज़बूरी है. फिलहाल हमारे यहां बैन लगा हुआ है.'

'कैसा बैन?'

'काजल की शादी तक घर में बच्चा नहीं आयेगा.'

'क्या बात करती हो?'

'सच कह रही हूं. मेरी शादी के समय एक पंचवार्षिक योजना थी. पहले मकान की किश्तें चुकायी जायेंगी. फिर पारुल की शादी का लोन पटाया जायेगा. अब यह योजना दो साल आगे सरक गयी है. क्योंकि काजल भी शादी के लिए तैयार हो रही है तो फिलहाल बच्चे के लिए न समय है न बजट.'

क्षण भर को उपस्थितों में जैसे सन्नाटा छा गया. पारुल मुंह में आंचल ठूंसकर रुलाई रोकते हुए उठकर चली गयी. मेरा पूरा परिवार सकते में था. मम्मी–पापाजी के चेहरे पर जैसे राख पुत गयी थी. पापाजी ग़ुस्से से थरथर कांप रहे थे. समधियाने का लिहाज़ करके ही चुप थे वर्ना गदर मचा देते.

मुझे लगा था लौटते हुए गाड़ी में ही बमवारी शुरू हो जायेगी. पर वैसा नहीं हुआ. सब चुप थे, शायद इन्होंने हिदायत दे रखी होगी. घर पहुंचकर महाभारत होना निश्चित था. इसलिए मैंने सीधे अपने कमरे का रुख किया. कपड़े बदल कर बिस्तर में दुबक गयी.

ये कमरे में आये तब एकदम भरे हुए थे. नीचे काफ़ी फ़ायरिंग झेलकर आये थे. अब सब कुछ मुझ पर खाली करना चाह रहे थे.

'तुम दो मिनिट चुप नहीं रह सकती थीं? हर बात का जवाब देना क्या ज़रूरी था?'

'दो मिनिट? मैं पूरे दो घंटे वहां चुपचाप बैठी लोगों की ऊलजुलूल बातें सुनती रही थी. ताने-तिश्ने झेल रही थी. पर मैंने किसी को भी पलट कर जवाब नहीं दिया. पर जब मम्मीजी ने ख़ुद मुझ पर आरोप लगाना शुरू किया तो मुझे अपना बचाव तो करना था न.'

'ऐसा क्या कह दिया था मम्मी ने?'

'आपने सुना नहीं था. वे बोलीं कि हम तो बार-बार कह रहे हैं कि अब एकाध बच्चा हो जाने दो पर वो तैयार नहीं होती. बच्चों से आज़ादी में खलल जो पड़ता है. बस, ये हिप्पोक्रेसी मुझसे बर्दाश्त नहीं हुई.'

'हिप्पोक्रेसी? तुमने मेरी मां को हिप्पोक्रेट कहा? तुम्हारी ये मज़ाल?' और उनका हाथ एकदम उठ गया. पता नहीं कैसे मैंने इस प्रतिक्रिया को भांप लिया था इसलिए मैं बिल्कुल तैयार थी.

मैंने उनका हाथ हवा में ही थाम लिया. अपनी दोनों मुट्ठियों में मैंने उनकी कलाई कसकर पकड़ ली और कसैले स्वर में कहा — 'बस, इतनी ही मर्दानगी शेष रह गयी है? बीबी की कमाई खाने वाले को इतना ताव शोभा नहीं देता.'

उनकी आंखें ग़ुस्से में फट पड़ने को हुईं. दांत पीसकर बोले — 'मैं तुम्हारा ख़ून पी जाऊंगा.'

'बाय ऑल मीन्स' मैंने शांति से कहा — 'अगर कुछ बाक़ी बचा हो तो ख़ुशी से पी लेना. वैसे पांच सालों में आप लोगों ने मुझे पूरा ही निचोड़ लिया है.'

उनके तेवर एकाएक ढीले पड़ गये. आवेश ठंडा पड़ गया. गुर्राकर बोले — 'अपनी नौकरी पर बहुत नाज़ है न तुम्हें. कल से घर बैठो. तुम्हारे इस घर में आने से पहले भी हम जी रहे थे. आगे भी जी लेंगे.'

मैंने कोई जवाब नहीं दिया. एक झटके से उनका हाथ छोड़कर आराम कुर्सी में जाकर धंस गयी.

उनका तो पता नहीं पर मैंने पूरी रात आंखों में ही काट दी थी, उसी आराम कुर्सी पर. रात क्या थी, कालरात्रि थी. किसी तरह कट ही नहीं रही थी. आधी रात के बाद धीरे से उठकर मैंने अपना एयरबैग निकाला. उसमें ज़रूरी कपड़े और पैसे रखे और सुबह की प्रतीक्षा करती रही.

सुबह जैसे ही नीचे का गेट खड़का मैं समझ गयी कि मम्मी–पापाजी घूमने निकल गये हैं. मैं धीरे से नीचे उतरी, गेट खोलकर सड़क पर आ गयी, कॉर्नर पर एक रिक्शा मिला, उसमें बैठकर सीधे स्टेशन की राह ली.

□

रास्ते भर मेरा मोबाइल रुक-रुक कर बजता रहा. मैं फौरन काट देती थी. थोड़ी देर बाद फिर बज उठता. उकताकर मैंने फिर स्विच ऑफ़ ही कर दिया और सो गयी. अरसे बाद ज़नरल बोगी में सफ़र कर रही थी. पर रात भर की जगी हुई थी. इसलिए बैठे-बैठे भी ख़ूब अच्छे से नींद आ गयी. उठी तो ख़ूब फ्रेश लग रहा था.

मैं सोच रही थी कि मुझे देखकर सब चौंक पड़ेंगे. पर ऐसा कुछ नहीं हुआ. मेरा आगमन शायद अपेक्षित था. पापा छूटते ही बोले — 'तुम घर से कहकर नहीं चली थीं क्या?'

'क्यों?'

'सुबोध का दो तीन बार फ़ोन आ चुका है. बहुत वरीड लग रहा था.'

पापा की बात पूरी भी नहीं हो पायी थी कि फ़ोन की घंटी फिर बजी — 'शायद उसी का होगा.' पापा बोले और उन्होंने फ़ोन उठा लिया — 'हां, हां, आ गयी है. बस अभी-अभी घर में घुसी है.' फिर उन्होंने मुझसे इशारे से पूछा कि बात करोगी तो मैंने मना कर दिया — 'वह अभी बहुत थकी हुई है. थोड़ी देर बाद तुमसे बात कर लेगी.' पापा ने कहा और फ़ोन रख दिया.

तब तक मां चाय ले आयी थीं. चाय पीकर मैं मां के कमरे में ही जाकर लेट गयी. ऐसी नींद लगी कि खाने के लिए मां को जगाना पड़ा.

खाने की टेबिल पर सभी लोग मौज़ूद थे. भैया–भाभी भी काम से लौट आये थे. पर मुझसे किसी ने कुछ नहीं पूछा. शायद मां ने ताकीद कर दी होगी. सबने वातावरण को सहज बनाने की भरपूर कोशिश की. उनकी यह सदाशयता देखकर मेरा मन भर आया.

मुझे नॉर्मल होने में दो दिन लगे. फिर एक दिन दोपहर में एकांत पाकर मैंने मां को सारी बात बतायी. इनके हाथ उठाने की बात मैं फिर भी छिपा गयी. कह देती तो शायद अपनी ही नज़रों में गिर जाती.

फिर एक दिन पापा ने मुझे पास बिठाकर कहा — 'मां ने मुझे सब कुछ बता दिया है. अब बताओ आगे क्या इरादा है?'

'अभी कुछ सोचा नहीं है पापा. पर एक बात तय है मैं वहां लौटकर नहीं जाऊंगी.'

'तुम्हारी नौकरी?'

'ट्रान्सफर करवा लूंगी. नहीं हुआ तो दूसरी ढूंढ़ लूंगी.'

इस बीच इनके फ़ोन आते रहे. एक बार मैंने ही उठा लिया था. बोले — 'आना चाहता हूं.'

मैंने कह दिया — 'अपमान सहन करने की क्षमता हो तो आने का मन बनाना.' उस दिन के बाद फिर फ़ोन आना बंद हो गया.

इस विचित्र परिस्थिति में अजीब सी मन:स्थिति में दिन गुज़र रहे थे. अड़ोसी-पड़ोसियों को, नाते-रिश्तेदारों को भनक पड़ गयी थी. खुसुर–पुसुर होने लगी थी. मुझसे किसी ने सीधे कुछ नहीं कहा, कुछ नहीं पूछा. पर मैं जानती थी कि घरवालों को रोज़ ही इस अप्रिय विषय से दो-चार होना पड़ता होगा.

एक दिन रात के खाने के बाद हॉल में मां-पापा, भैया-भाभी सबने मुझे बुलाकर अपने पास बिठा लिया. पापा बोले — 'बेटा हम नहीं जानते कि तुम दोनों के बीच एक्ज़ेक्टली क्या हुआ है. हम तो उतना ही जानते हैं जितना तुमने अपनी मां को बताया है. पर अब मुझे यह बताओ कि जो कुछ भी हुआ क्या वह इतना गंभीर है कि उसके लिए तुम अपना घर अपनी शादी, अपना भविष्य दांव पर लगा दो?'

मैं पापा को कैसे बताती कि उस दिन पलभर को ही सही मैंने उन आंखों में प्रतिहिंसा की जो लपट देखी थी उसमें मेरे भीतर जो कुछ कोमल था, मधुर था, प्रेयस था सब जलकर राख़ हो गया है. अब उस राख़ को कुरेदने का, मेरा मन नहीं है.

- 'पापा!' मैंने कांपते स्वर में कहा — 'मैं आप लोगों पर बोझ नहीं बनना चाहती. मैं अपने लिए...'

'शटअप' भैया एकदम गरजे. 'फालतू बात मत करो. पापा जो कुछ पूछ रहे हैं उसका जवाब दो.'

'मैं अपनी बात बहुत पहले कह चुकी हूं.' मैंने निर्णायक स्वर में कहा.

'ठीक है. तो अब हमें आगे की कार्यवाही करनी होगी. हम यूं हाथ पर हाथ धरे तो नहीं बैठ सकते.'

फिर पापा ने सुबोध को लंबा पत्र लिखा — मुझे दिखाया भी था. लिखा कि कारण जो भी रहा हो अनुश्री अब वापिस जाना नहीं चाहती. तो अब हमें इस स्थिति का, समस्या का वैधानिक निराकरण करना होगा ताकि यह अनिश्चय की स्थिति समाप्त हो. तुम दोनों बंधनमुक्त होकर अपनी-अपनी राह चलने को स्वतंत्र हो जाओ यही श्रेयस्कर है. इसके लिए आपसी समझौता एक अच्छा विकल्प है. इससे पैसा भी बचेगा और समय भी. न्यायालयीन प्रक्रिया लंबा समय लेती है और उसमें छीछालेदर भी बहुत होती है.

मां ने बहुत चाहा था कि हम दोनों एक बार साथ बैठकर शांति से बात करें तो कोई हल निकल आयेगा. पर मैंने साफ़ मना कर दिया. मां को बहुत बुरा भी लगा. वे सहज, क्षमाशील वृत्ति वाली महिला हैं. उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि उनकी बेटी में ये अक्खड़पन, यह हठधर्मिता कहां से आ गयी.'

इस बीच मेरी दोनों ननदों के भी दो चार फ़ोन आये. मैंने उन्हें बताया कि जो कुछ हुआ अचानक नहीं हुआ है. शायद बहुत दिनों से मन में कुछ धधक रहा था जिसका विस्फोट हुआ है. अरसे से हम दोनों के बीच एक तनाव व्याप्त था. ब्रेकिंग पॉइंट तो आना ही था. वैसे मैंने उन्हें आश्वस्त किया कि ननद भाभी का रिश्ता चाहे न रहे, हम लोगों के बीच स्नेह बना रहेगा.

...ऐसी बातों पर कौन विश्वास करता है?

□

मैंने सोचा था, 'आपसी समझौता' मतलब तुरत फुरत कार्यवाही होगी. पर सारी प्रक्रिया बड़ी लंबी, उबाऊ और जानलेवा थी. कहने को मामला आउट ऑफ कोर्ट था पर वही वकील थे, पुलिस थी, गवाह भी थे. सबकी पेशी हुई, सबके बयान हुए.

ससुराल का पूरा परिवार वहां मौज़ूद था. हम लोग एक दूसरे को टुकुर–टुकुर देखते रहे. पर कोई बात नहीं हुई. मेरा मन हो रहा था मम्मी-पापाजी को प्रणाम कर लूं. पर डर लगा, अगर उन लोगों ने पैर पीछे खींच लिये तो इतने लोगों के सामने मेरी किरकिरी हो जायेगी. वैसे भी वे लोग अब मुझे आशीर्वाद देने से तो रहे.

इन्हें पूरे दस महीने बाद देखा था. काफ़ी दुबले और बुझे-बुझे से लगे. हम लोग पूरे समय एक दूसरे से आंखें चुराते रहे. सिर्फ़ ज़रूरत भर बात की. तिरस्कार या उपेक्षा, जो भी हो दोनों तरफ़ समान ही थी.

हमारी तरफ़ से कोई मांग नहीं थी. इसलिए ज़्यादा खींचतान नहीं हुई. सेटलमेंट आसानी से हो गया.

पापा ने कहा — 'बिटिया आवेश में घर से खाली हाथ ही निकल पड़ी थी. उसका सारा सामान वहां छूट गया है. उसके लिए आदेश दिया जाये.'

तुरंत आदेश मिल गया.

वहां से निकलते हुए पापा ने पूछा — 'अपना सामान लेने अभी चलोगी या...'.

'पापा प्लीज़.' मैंने कांपते स्वर में कहा तो पापा समझ गये.

'अच्छा, अभी रहने देते हैं. कल का पूरा दिन अपने पास है. कल देखते हैं.'

सुबह भैया मेरे कमरे में आये, बोले — 'तैयार हो जाओ.'

मैंने कहा — 'भैया, मैं वहां नहीं जाऊंगी. मैंने यह लिस्ट बनाकर रखी है, ले जाइए. दे देते हैं तो ठीक नहीं तो जै रामजी की.'

भैया ने लिस्ट देखी, काफ़ी लंबी थी. मेरा लैपटॉप, मेरे सारे सर्टिफ़िकेट्स, दो पासबुक (ज्वाइंटवाली छोड़ दी थी) पासपोर्ट, आधारकार्ड, पैनकार्ड, लेटर आयडी, मेरी कुछ पेटिंग्स, क़िताबों का कलेक्शन और मेरे रामसीता.'

'बस?' भैया बोले — 'और कुछ नहीं? कपड़े जेवर वग़ैरह?'

'मुझे कुछ नहीं चाहिए.'

मुझे होटल के कमरे में छोड़कर भैया और पापा चले गये. काफ़ी देर बाद लौटे. मुझे तो चिंता होने लगी थी. भैया का स्वभाव जानती हूं न! कही भिड़ तो नहीं गये दोनों?

लौटकर भैया ने बताया — 'तुम्हारी सारी चीज़ें अल्मारी में रख दी गयी थीं. सुबोध ने मुझे चाभी दे दी थी. घर जाकर अल्मारी खंगाल लेना.'

'आप क्या, अल्मारी उठा लाये हैं?'

'हां और लॉकर से तुम्हारे जेवर भी मंगवा लिये थे. देख लो, सब हैं तो.

'होंगे ही. कहां जायेंगे?'

'मुझे उन लोगों पर ज़रा भी भरोसा नहीं है. तुम्हारी शादी में दोनों के लिए चांदी की दो थालियां दी थीं याद है. हर थाली के साथ ५-५ कटोरियां और एक-एक गिलास था.'

तो?

शादी के बाद कभी यूज़ किया था?

'नहीं, मौक़ा ही नहीं आया.'

'एक सेट पारुल की शादी में दूल्हे राजा को भेंट कर दिया गया.'

'क्या बात कर रहे हैं?'

'तुम्हें पता नहीं था न. मैं जानता था. सुनकर मुझे तो आग लग गयी. मैंने कहा— 'मुझे पारुल के घर ले चलिए. मैं अपना सामान ले लूंगा. फिर तुम्हारे ससुर एकदम गिड़गिड़ाने लगे. (मेरे दुर्दांत ससुर गिड़गिड़ाने लगे — आश्चर्य) बोले — ऐसा ग़ज़ब मत कीजिए. उन लोगों तक यह बात नहीं जानी चाहिए. नहीं तो इज़्ज़त का कचरा हो जायेगा. बिटिया ज़िंदगी भर सिर नहीं उठा सकेगी. हम आपको इसी वज़न का सेट बनवाकर दे देंगे या इसकी क़ीमत दे देंगे.

'फिर?'

'फिर क्या? बिटिया का नाम सुनते ही पिताश्री पिघल गये.' बोले — 'मैं किसी की बेटी का दुःख नहीं देख सकता. यह सेट भी आप रख लीजिए. काजल की शादी में हमारी ओर से दूल्हे की नज़र कर दीजिए.'

ग्रेट पापा! मैंने मन ही मन कहा.

'फिर तो मुझे ऐसा ताव आया कि मैंने सारा सामान समेट लिया. सिर्फ़ पलंग और डायनिंग टेबल छोड़ दिये. घर में जगह कहां है? भीड़ बढ़ाने से फ़ायदा.

तभी पापा कमरे में आये और बोले — 'अजय ये टीवी ट्रक में ठीक से तो चला जायेगा ना? कि साथ में रख लें?

'मैंने ख़ूब अच्छे से पैक करवा लिया है पापा! डोंट वरी.'

'आप लोग टीवी भी ले आये हैं?' मैंने पूछा.

'तुम्हारी चीज़ थी तो लायेंगे नहीं?'

मेरी चीज़ थी पर मैंने एक बार भी उस टीवी में कोई कार्यक्रम नहीं देखा. मेरी शादी से पहले ड्राइंग रूम में एक छोटा टीवी रखा रहता था? नये टीवी के आते ही छोटा हमारे कमरे में आ गया. बड़ा ड्राइंग रूम की दीवारों पर सज गया. श्रीमान जी बोले — 'अपने कमरे के हिसाब से वह बहुत बड़ा है.'

उस टीवी के बिना ड्राइंग रूम की वह दीवार कितनी सूनी लग रही होगी? छोटा वाला शायद फिर नीचे आ गया होगा.

'चलो बेटा ट्रक को रवाना कर दो. फिर अपनी तैयारी करते हैं?' पापा ने कहा.

'आप लोग ट्रक लेकर आये हैं?'

'तो इतना सामान क्या कंधे पर टांग कर ले आते. ज़रा, खिड़की से झांक कर देख तो कितना सामान है.'

मैंने देखा, होटल के गेट के पास एक मिनी ट्रक खड़ा था. उसमें फ्रिज़, वॉशिंग मशीन, अल्मारी, सोफ़ासेट और पता नहीं क्या-क्या भरा हुआ था.

इतना सब सामान निकल जाने के बाद घर तो एकदम वीरान लग रहा होगा — मेरे दिल की तरह और इतना सब सामान पापा रखोगे कहां? एक कोने में फ़ालतू पड़ा रहेगा — मेरी तरह.

'अच्छा बेटा, तुम अब अपनी तैयारी करो. हम ट्रक रवाना करके आते हैं.

'पापा?'

पापा एकदम रुक गये. पीछे मुड़कर बोले — 'कहो बेटा?

'क्या?'

'मुझे लगा तुमने मुझे आवाज़ दी थी.'

'नहीं तो.' साफ़ झूठ बोल गयी मैं.

'मुझे भ्रम हुआ होगा. अच्छा मैं नीचे जा रहा हूं. तुम दरवाज़ा ठीक से बंद कर लेना. होटल में दस तरह के लोग घूमते हैं.'

पापा चले गये तो मैंने दरवाज़े को ठीक से बंद कर लिया. बंद दरवाज़े पर सिर टिकाकर खड़ी हो गयी मैं.

'पापा.' मैंने कहा — 'ससुराल जाते समय मेरे साथ और भी तो सामान था. मेरे सतरंगी सपने, मेरी सुनहरी आशाएं, ढेर सारी सलोनी उमंगें. और सहज सरल विश्वास.'

मेरा यह सामान कब लौटेगा?

कौन लौटायेगा?

'स्नेह बंध'
५०, दीपक सोसायटी, चूना भट्टी, कोलार रोड,
भोपाल- ४६२०१६.
मो.: ९९९३०६८००७

कहानी

उड़ान

डॉ. अशोक भाटिया

वैसे यह क़िस्सा किसी भी आदमी का हो सकता है. पूरा या आधा-अधूरा. क़िस्सा यों है कि एक आदमी था. इसी शहर में रहता था. वैसे ऐसा आदमी किसी भी शहर में हो सकता है. तो वह इसी शहर में रहता था. रहता क्या था, उड़ता था. बैठे-बैठे वह कहीं भी उड़ जाया करता. उसके पंख बस उसे ही दिखाई देते थे. उसका क़द बहुत ऊंचा था. इतना ऊंचा कि बड़ी-बड़ी इमारतों में वह समा नहीं सकता था. वह जब मन करता, बड़ी-बड़ी इमारतों के ऊपर से उड़कर शहर भर में घूम आता. वह चाहता कि लोग उसे आश्चर्य से देखें और उसकी प्रशंसा करें. लेकिन लोगों को वह दिखाई नहीं पड़ता था.

वह मानव ही था, पर था बड़ा विचित्र. उसमें देखने, सुनने, सूंघने और सोचने की अद्‌भुत शक्ति थी. उसके सिर का भेजा बड़ा ही विशाल और टनों भारी था. हाथ उसके इतने लंबे थे कि अगर पूरे खोल दे तो आसमान को छू ले, तारों को पकड़ ले, चांद को हथेली पर बिठा ले. तेज़ उसमें इतना था कि सूर्य को आशीर्वाद दे डाले. उसकी आंखें चमड़ी की सतह तक सोचने वालों की नज़र में तो बहुत छोटी थीं, लेकिन उसके भीतर इतनी रोशनी थी कि उसके सहारे वह कई किलोमीटर तक देख लेता था. उसके भीतर की रोशनी का कुछ जायज़ा, उसकी चाल, उसके चेहरे और उसके उठने-बैठने और बात करने के ढंग से मालूम पड़ जाता था. लेकिन लोगों को इस बात से कुछ लेना-देना नहीं था. वे अपने दैनंदिन कार्यों में इतने उलझे हुए थे कि इस आदमी के बारे में कुछ सोचने या उससे बात करने का उनके पास वक़्त ही नहीं था. वे उसे बस इतना मानकर, कि वह देखने में उनसे कुछ ज़्यादा गंभीर और समझदार है, इसके अलावा कुछ नहीं,... अपने रास्ते हो लेते थे. होता भी क्यों. वह आदमी अपने में चाहे जो कुछ था, पर कभी सचमुच में उसने सूर्य को आशीर्वाद दिया हो, या चंद्रमा को हथेली पर बिठाया हो, आसमान को छूकर या तारे तोड़कर उनके लिए लाया हो तभी तो वे उसे कुछ मानेंगे.

उस आदमी का पिता एक छोटी-सी नौकरी में रहा था. आम बाबू लोगों की तरह थोड़ा-बहुत इधर का उधर करते-करते रिटायर हो गया था. उसका भाई छोटी-मोटी दुकान करता था. आम दुकानदारों की तरह वह भी किराने के कुछ सामान में मिलावट करके घर चलाता था. चलाता क्या था, ठाठ करता था. उसकी बहन बारहवीं के बाद कॉलेज़ में पढ़ रही थी. आम लड़कियों की तरह उसके सपने भी सजने-संवरने और एक राजकुमार को तलाश कर उसे समर्पित हो जाने तक सीमित थे. घर के ये तीनों प्राणी ख़ुद भी और एक-दूसरे से भी ख़ुश-संतुष्ट थे.

लेकिन घर के इन तीनों सदस्यों को इस विचित्र मानव का व्यवहार बड़ा अज़ीब लगता. पिता तो अपने बचे हुए जीवन में मानो किसी को भी कुछ न कहने की ठाने हुए थे, लेकिन उसका भाई और बहन उसे एबनॉर्मल कहते थे. उसका बड़ा भाई दुकानदार था. वह उसे कहा करता कि तू तो पागल है. सिर्फ़ सोचने से क्या ज़िंदगी चलती है. मेरे दम पर तू मौज कर रहा है. बी. ए. करके मटरगश्ती कर रहा है. अपने लिए कुछ साधन जुटा, कहीं कोई काम-धंधा कर, वरना ऐसे गुज़र नहीं होने वाली. भाई ने उसे दुकान में साथ बैठने को भी कहा, लेकिन वह विचित्र प्राणी दुकान पर बैठने में अपनी तौहीन मानता था. इतनी बड़ी सोच वाला मैं इस छोटी-सी दुकान पर बैठकर अपनी तौहीन नहीं होने दूंगा, वह सोचता. उसकी बहन थी तो उससे तीन साल छोटी, लेकिन हंसी-मज़ाक में ही उसे कुछ न कुछ कह जाती थी. उसकी बातों का सार यह था कि दुनिया में दुनिया की तह रहना पड़ेगा. सारा दिन क़िताबें, सिगरेट और सोच

में डूबे रहने से कुछ हासिल होनेवाला नहीं है. दुनिया से अलग-थलग होकर ज़िंदगी नहीं बितायी जा सकती. दुनिया में रहना है तो दुनिया का होना पड़ेगा. पिता भी परेशान थे, लेकिन वे कहते कुछ नहीं थे.

लेकिन इस विचित्र मानव पर भाई-बहन की बातों का कोई असर नहीं पड़ता. वह पहले की तरह अपनी सोच में डूबा रहता. उसकी उड़ान ज़ारी रहती. खाना खाते हुए, पढ़ने की टेबुल के सामने बैठते हुए, सोते लेटते हुए वह बेहतरीन इंसान, बेहतरीन देश और बेहतरीन विश्व के स्वरूप पर सोचता रहता. उसने इतिहास खंगाला, भूगोल नापा, साहित्य में डूबा. मार्क्स और फ्रॉयड के सिद्धांत, गीता और रामायण के प्रसंग, टॉलस्टॉय, चेखव, लू शुन और गोर्की की प्रमुख रचनाएं पढ़ डालीं. लेकिन वह किसी से इसकी चर्चा न करता. काग़ज़ पर लिखता जाता. ... कोई भी देश दूसरे पर आक्रमण न करे, यह कैसे होगा? ... किसी भी देश के पास न हथियार हों, न फौज हो. यह कैसे होगा? ... देश के सारे बड़े घर गिराकर छोटे बना दिये जायें. पांच सौ गज़ से बड़े घर बनाने की किसी को भी इज़ाज़त न हो तो देश के सारे परिवारों को सौ-सौ गज़ की जगह मिलने का अनुमान है. .. फलां-फलां मंदिरों, गुरुद्वारों की संपत्ति देश की जी. डी. पी. में मिला दें तो ... अगर गीता में श्रीकृष्ण न कहते कि मैं ही ईश्वर हूं और मैंने ही वर्ण-व्यवस्था बनायी है... अगर राम छिपकर बाली को न मारते... उस विचित्र जीवन का यह 'अगर' कहीं ख़त्म न होता. उसमें नित नये अगर जुड़ते जाते... लब्बो-लुआव यह कि उसके लिखे काग़ज़ों का ढेर छत को छूने वाला हो गया. दरअसल वह अपने अंदर एक समंदर को पाल रहा था. सोच की नित नयी नदी उसमें रोज़ मिलती जाती. वह उस समंदर को सम्हाले-सम्हाले फिरता कि कहीं ठोकर से छलक न जाये, कहीं वाष्पीकरण से इसका जल कम न हो जाये. बाहर के ठाठें मारते समंदर के किनारे तो उसके समेत कई लोग इकट्ठे होते ही थे, उसके नज़ारे देख इठलाते–घूमते थे. लेकिन उसके पास भी एक समंदर है, जिसमें रोज़ नयी-नयी सोच की नदियां मिलती जा रही हैं — इसे कौन जानता था. लेकिन कोई जाने भी तो क्यों और कैसे? सब अपनी दुनिया में मस्त हैं.

उसके समंदर को चाहे कोई न जानता था, लेकिन उसका छलछल करता नाद तो उसके चेहरे से भी झलकता-

५ जनवरी १९५५ (अंबाला छावनी)
एम. ए. (हिंदी), एम. फिल् , पीएच. डी.

: लेखन-क्षेत्र :

कविता, लघुकथा, बाल साहित्य, आलोचना, ज्ञान साहित्य.

: प्रकाशित पुस्तकें :

१२ मौलिक तथा १२ संपादित पुस्तकें, लघुकथा संग्रह 'जंगल में आदमी' और 'अंधेरे में आंख' (तमिल व मराठी में भी), संपादित पुस्तकों में 'निर्वाचित लघुकथाएं' (हिंदी लघुकथा की संपूर्ण यात्रा), 'नींव के नायक' (१९७० तक की हिंदी लघुकथाओं का दस्तावेज़) और आलोचना में 'समकालीन हिंदी कहानी का इतिहास' और 'समकालीन हिंदी लघुकथा' (२०१४) विशेष चर्चित

: विशेष :

'चक्रव्यूह' नाटक और 'भीतर का सच' लघुकथा पर लघु फ़िल्में.

: पुरस्कार/सम्मान :

'समुद्र का संसार' (१९९० बाल पुस्तक) पर हरियाणा साहित्य अकादमी का कृति पुरस्कार. 'मिन्नी' द्वारा प्रथम अ.भा.माता शरबती देवी सम्मान (१९९२ कोटकपूरा), अंतर्राष्ट्रीय लघुकथा गौरव सम्मान (२००८ रायपुर), लघुकथा आलोचना शिखर सम्मान (२०१० पटना), दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा हैदराबाद द्वारा सारस्वत सम्मान (२०१२) आदि.

: संप्रति :

राजकीय महिला महाविद्यालय करनाल में हिंदी विभाग के पूर्व एसोसिएट प्रोफ़ेसर व अध्यक्ष. आजकल सामाजिक कार्य और स्वतंत्र लेखन.

छलकता था. इसकी तरफ़ खिंचकर एक लड़की नदी की तरह उसकी तरफ़ खिंची चली आयी. उसने इस विचित्र मानव की ज़िंदगी में एकबारगी हलचल मचा दी. लड़की का चांद और भी खिल उठा, इधर विचित्र मानव का समंदर हिल उठा. उसे लगा कि सिर्फ़ संजोना नहीं, देना भी ज़िंदगी का ज़रूरी हिस्सा है. नदी और समंदर दोनों एकमेक हो गये.

धीरे-धीरे विचित्र मानव का भारी-भरकम भेजा छोटा होना शुरू हो गया. कुछ महीनों तक लोगों ने उसके चेहरे पर रौनक और आंखों में चमक देखी. उसके पिता, भाई और बहन को भी लगा कि यह अब नॉर्मल होने लगा है. आगे क्या होता, न होता, उससे पहले ही वह लड़की इस विचित्र जीव से दूर हो गयी. वजह किसी को मालूम नहीं. लोग अनुमान लगाते रहे कि दोनों की उड़ान के मायने और दिशाएं अलग-अलग हैं. विचित्र जीव ने सोचा कि उसका समंदर किसी एक के लिए सीमित नहीं हो सकता. उसकी उड़ान पूरी दुनिया के लिए है. पूरी दुनिया को उसकी ज़रूरत है. पूरी दुनिया की ग़रीबी, भ्रष्टाचार, हिंसा, शोषण को वह मिटा देना चाहता था. लेकिन कैसे? इसे लेकर उसके पास कोई योजना या प्रणाली नहीं थी. ऐसी योजना के बारे में उसने कभी सोचा भी नहीं था.

शहर के लोगों की नज़रों में वह या तो निकम्मा था या पागल. वे सोचते कि इसे कोई काम-धाम नहीं है. बैठा भाई की रोटियां तोड़ रहा है. बहन भी ब्याहने योग्य हो गयी है और ये महाशय अपनी हवाई उड़ान पर हैं. कुछ ने सोचा कि इतनी अच्छी लड़की इसकी ज़िंदगी में आयी, लेकिन उसे भी नहीं सम्हाल सका. इसका भला किससे निबाह होगा? ज़रूर दिमाग़ ख़राब है इसका. नयी उमर के लड़के भी उसे देखकर हंसा करते. लोगों की नज़रों में वह अभी तक कोई जगह नहीं बना पाया.

अपनी ज़िंदगी में से उस लड़की के चले जाने के बाद वह पहले तो बड़ा तड़पा. क़िताबें-काग़ज़-चिंतन भी उसे अब वैसा सहारा नहीं दे पा रहे थे. आख़िर उसने लोगों से थोड़ा-बहुत मेल-जोल बनाना शुरू किया. बाज़ार में, पड़ोस में वह दो-चार के बीच खड़ा होकर उन्हें ऊंचा सोचने की सलाह देता. धीरे-धीरे शहर में उसकी थोड़ी-बहुत पहचान बनने लगी. लोग उसकी बात ध्यान से सुनते.

अब उसे दो-तीन संस्थाओं ने अपने विचार रखने के लिए बुलाया. एक संस्था में उसने अपने विचार रखकर क़रीब सबको नाराज़ कर दिया. जनसंख्या को लेकर उसका मत था कि जिनके दो बच्चे भी हैं, वे भी जनसंख्या को बढ़ा रहे हैं. वे भी देशभक्त नहीं हैं. लोगों ने आपत्ति की. इस विचित्र जीव के पास तर्कों का खज़ाना था. वह बोला — गर पच्चीस साल की उम्र में लड़के-लड़की की शादी हुई,तो पांचेक साल में मान लो कि उनके दो बच्चे हो गये. तो अगले पच्चीस साल तक वे चारों रहेंगे. पच्चीस साल तक वे दो से चार रहे. फिर उन बच्चों की शादियां... इस तरह वे औसत उम्र यानी पिचहत्तर साल में अगर मरेंगे तो तब वे पीछे छह जीव छोड़कर जायेंगे. ... इसलिए आपमें कोई भी देशभक्त नहीं है...

हंगामे के बीच विचित्र जीव को वहां से निकाल दिया गया. फिर किसी संस्था ने उसे नहीं बुलाया. राह चलते लोग भी उससे कन्नी काटने लगे. कुछ दिन पहले तक उसे लगने लगा था कि समाज में एक तूफ़ान आने वाला है. उस तूफ़ान में उसका समंदर हहरायेगा. उसके विचारों के जल से भरकर बादल कृतज्ञ हो जायेंगे. समाज पर बरसकर वे उसे नये सिरे से सींच देंगे. तब एक नया समाज खिलकर सामने आयेगा. लेकिन लोगों में अब उसके प्रति क्रोध भर गया था.

लेकिन मेरी मानिए, वह आदमी सचमुच समंदर था. वह उससे कम न था, न होना चाहता था. लोग चुल्लू-भर पानी लेकर ही ज़िंदगी में भागे जा रहे थे. लोगों ने देखा कि उनका उस विचित्र व्यक्ति के साथ कोई मेल नहीं हो सकता. आख़िर उन्होंने समंदर से मुंह मोड़ लिया. उससे नाता तोड़ लिया. उसका समंदर धीरे-धीरे सिमटने लगा. सूखने लगा. रंग-बिरंगी मछलियां, कम होने लगीं. लोग अपने में व्यस्त थे. अपने बने-बनाये रास्ते जानते थे. न लोगों का रास्ता उस तक आता था, न उसका रास्ता लोगों तक. इसी तरह धीरे-धीरे एक दिन उसका समंदर सूखकर ख़त्म हो गया.

बसेरा, १८८२, सेक्टर नं.१३,
करनाल-१३२००१.
मो. : ९४१६१५२१००
ई-मेल : ashokbhatiahes@gmail.com

लघुकथा

स्त्री-शिक्षा

योगेंद्र शर्मा

सुन प्रीवियस में नब्बे प्रतिशत अंक हैं. फिर क्यों पढ़ाई छोड़ रही है.

घर वाले कह रहे हैं कि तुम्हें पढ़ाया इसलिए जा रहा था, कि तुम्हारी शादी किसी अच्छे घर से तय हो सके. शादी अच्छे घर में तय हो गयी है. वो लोग बहू से नौकरी कराने के पक्ष में नहीं हैं.

३/२९ सी, लक्ष्मीबाई मार्ग,
रामघाट रोड, अलीगढ़ (उ. प्र.)

दो ग़ज़लें

✍ राकेश 'भ्रमर'

जिसने इस राह पे क़दमों को बढ़ाया होगा.
उसने हर हाल में कांटों को हटाया होगा.

जिसने इस वक़्त के पेड़ों को जला डाला है,
उसने सहरा में परिंदों को बसाया होगा.

खेत-खलिहान के मंज़र नज़र नहीं आते,
हमने इस दौर में शहरों को बसाया होगा.

आज पूनम में यहां चांद क्यों नहीं निकला,
हमने आंगन में सितारों को सुलाया होगा.

जिस तरफ़ राह में मंज़िल के अंधेरे होंगे,
उस तरफ़ हमने चरागों को जलाया होगा.

इतने विषधर कहां से आज निकल आये हैं,
इस जगह हमने संपेरों को बसाया होगा.

उजड़े बागों में यहां कौन टहलता होगा.
मन की बेताबियों को कौन समझता होगा.

चलके देखो कहीं मंज़र हसीन भी होंगे,
रुक के वीरानियों में कौन भटकता होगा.

इन मकानों की बहुत सी कहानियां होंगी,
सूने आंगन में यहां चांद उतरता होगा.

उसके मन की क़िताब हो सके तो पढ़ लेना,
तन की मज़बूरियों को कौन समझता होगा.

उसको शबनम की तरह फूल पर चमकने दो,
दिल की नादानियों को कौन समझता होगा.

देह की तितलियां देखो न कहीं उड़ जायें,
उनकी आवारगी को कौन समझता होगा.

७, श्री होम्स, बचपन स्कूल के पास, कंचन विहार, विजय नगर,
जबलपुर-४८२००२ (म. प्र.) मो. : ९४२५३२३१९३
ई-मेल- rakeshbhramar@rediffmail.com

लघुकथा

अपहरण

✍ ओमप्रकाश बजाज

विचित्र घटनाक्रम हुआ. पोते को स्कूल बस तक छोड़ने गये दादाजी ने जैसे-तैसे पोते को तो बचा लिया किंतु 'भागते चोर की लंगोटी ही सही' के अनुरूप अपहरणकर्ताओं ने स्वयं दादाजी को दबोच लिया.

बदहवास पोते ने जैसे-तैसे घटना की ख़बर घर आ कर सुनायी. इस बीच एक करोड़ रुपये की फ़िरौती की मांग भी फ़ोन पर आ गयी. दादाजी के जमाये करोड़ों के कारोबार के कर्ता-धर्ता तीनों बेटों में विचार विमर्श हुआ और अपहरणकर्ताओं से फ़िरौती की राशि पर मोलभाव शुरू हुआ. मांग एक करोड़ से पांच लाख तक आते-आते पांच दिन निकल गये. इस बीच उच्च रक्तचाप तथा तीव्र मधुमेह के पुराने रोगी पच्चासी वर्षीय दादाजी की हालत बिना नियमित दवाई के निरंतर बिगड़ती चली गयी.

बेटे पांच लाख भी देने को राज़ी नहीं हुए. दादाजी की चिंताजनक हालत से घबराकर या (संभव है!) द्रवित हो कर अपहरणकर्ता बिना कोई फ़िरौती लिये रात को किसी समय उन्हें बंगले के बाहर डाल गये!

विजय विला, १६६-कालिंदी कुंज, पिपलिहाना, रिंग रोड,
इंदौर-४५२०१८. मो. : ९८२६४९६९७५

कहानी

एक और चेहरा

कुसुम भट्ट

तो जाऊं, मैं? माला ने आंखें टिका दीं विक्रम के चेहरे पर... विक्रम वाश वेशिन के आगे खड़ा होकर दाढ़ी बनाने में व्यस्त था. उसने जीभ का टेक बांये गाल पर लगायी हुई थी जिससे उसका गाल गुलगुले-सा दिखाई दे रहा था. उसने रेज़र फूली जगह पर टिकाया ही था कि माला का स्वर टप्पा खाती गेंद की तरह उछला और लिजलिजे कीड़े-सा उसके मन-मस्तिष्क के केंद्र बिंदु पर चिपक गया. उसने गर्दन तनिक तिरछी की तो ब्लेड से चेहरा छिल गया. उसकी आंखों में पल भर पीड़ा कुलबुलायी और वह पानी के छपाके चेहरे पर डालने लगा. खरोंच पर नन्हीं-नन्हीं ख़ून की बुंदकियां देख कर वह फिटकरी रगड़ने लगा — खरोंच की जगह पर. माला उसे अनचाही मुसीबत की पोटली थामे दिखायी दी... माला उसके जवाब की प्रतीक्षा में खड़ी रही. उसने झूठमूठ भी नहीं कहा कि च्च...च्च देखो तो तुम्हारे चेहरे पर खरोंच आ गयी मेरे कारण. विक्रम फिर पानी के छपाके चेहरे पर उछालता रहा यों ही... फिर तौलिया रगड़ने लगा चेहरे पर, माला एकदम उसके नज़दीक सरक आयी और उसका चेहरा ताकने लगी. वहां कोई भाव वह पकड़ नहीं पायी. विक्रम ने उड़ती नज़र से माला को देखा और सपाट स्वर में बोला, 'जाना तो तुझे पड़ेगा ही मेरी बुलबुल... जब...' उसका चेहरा धुएं की लकीर छोड़ने लगा तो माला कट कर रह गयी. विक्रम उसके घरवालों का नाम आते ही प्रत्येक बात को व्यंग्य की टोन में बोलता है. माला समझ नहीं पाती. गैस पर रखी सब्ज़ी की जलने की गंध आयी तो माला रसोई में चली गयी और विक्रम के लिए पराठे सेंकने लगी. साढ़े पांच बजे थे सुबह के जब आश्रम से फ़ोन आया था. फ़ोन विक्रम ने ही उठाया था और और वह नाम सुनते ही रिसीवर माला को थमा दिया था. अभी माला की आंख पूरी खुली भी नहीं थी. उस आवाज़ ने उनके मन मस्तिष्क पर तनाव की खपच्चियां चढ़ा दी थीं जो खचपच-खचपच एक विचार से दूसरे विचार के कोने को ठेस लगा रही थीं. 'माला बिटिया बोल रही है...?' उधर से संवेदनहीन स्वर गूंज रहा था, जैसे बिटिया बोलना अनिवार्य हो. 'शीघ्र यहां आ जाओ बिटिया...'

लेकिन बात क्या है स्वामी जी... वे ठीक तो हैं न...?' माला ने डरते-डरते पूछा. आशंका उभरने लगी थी कि कहीं उनका..? नहीं... ऐसा कैसे हो सकता है...? माला की आत्मा की सतह पर ग्लानि का नन्हा-सा लिसलिसाता कीड़ा जाने कब चुपके से घुस गया था. उसकी तीव्र इच्छा हुई इस कीड़े को दूर झटक दे... तुरंत... वरना वह उसकी आत्मा पर डंक मारता रहेगा... और वह...

माला ने फिर पूछा... 'वे ठीक तो हैं न स्वामी जी...' मन ही मन माला उनके सही सलामत होने की दुआ मांगने लगी, ताकि उनकी सेवा करके उस कीड़े से मुक्ति पा सके... लेकिन स्वामी जी को माला का पूछना बेतुका लगा. उन्होंने फ़ोन रख दिया.

विक्रम को खिला-पिला कर माला ने उसका लंच बॉक्स तैयार किया और गुसलखाने में घुस गयी. गनीमत थी कि दोनों बच्चे घर में नहीं थे. पिछली बार जब बिना कोई सूचना के वे अचानक आ गये थे तो परिवार में अजीब तनाव व्याप्त गया था.

बड़ा मयंक तो मनुष्यता की रेखा से एकदम नीचे खड़ा हो गया था. 'जोगी बाबा... हो हो हो ओ शिट! ओ मां! अपने पिता को जाने के लिए कहो... यू नो... मां... मेरे दोस्त के नाना रिटायर होने के बाद आदिवासियों के बच्चों

को पढ़ाने चले गये थे जंगल में. स्कूल खोल दिया उधर...' माला बेटे का चेहरा देखती रह गयी... यह तीसरी पीढ़ी इसकी सोच... उसे बेटे पर प्यार उमड़ने लगा. लेकिन तभी उसे सुनाई दिया, 'ही इज़ वेरी सेल्फ़िश मैन... मुक्ति— ओम... शांति... ही विल गो टू हेल' और माला के हाथ की छाप मयंक के मासूम गाल पर पड़ी तो वह हैरान रह गया, ऐसा करारा थप्पड़. 'ठीक है...' वह चेहरे पर धुंआ लिये बाहर निकलने को हुआ तो माला चीख़ पड़ी, 'ख़बरदार! जो फिर कुछ कहा... पिता हैं वे मेरे... उनका रक्त मेरी शिराओं में बह रहा है... उनके बिना मैं... क्या हूं... बता सकते हो... तुम...?' माला तकिए पर सिर रख सिसक-सिसक कर रोने लगी. उस समय वे गुसलखाने में नहा रहे थे. शाम के संध्या भजन के लिए पूस की कड़कड़ाती ठंड में यह क्रिया अनिवार्य थी.

माला को उनके आने पर एक क्षण दिव्यता का वातावरण दिखता. 'ओम नमः भगवते वायुदेवाय' जितनी देर वे मंत्र जपते, माला ईश्वर की कल्पना करने लगती. लेकिन अगले ही क्षण वह उस तनी हुई रस्सी पर चलने को अभिशप्त होती. 'लोग पूछेंगे तो कहना दूर के रिश्तेदार हैं.' विक्रम उसे कहता और उनकी नकल उतारने लगता. माला ने गहरी सांस ली मानो सारे विष को ख़ुद ही गले में उड़ेलकर नीलकंठी बनने का संयम पैदा कर रही हो...

'माला... ओ माला की बच्ची!' माला गीले बालों को निचोड़ती गुसलखाने से बाहर निकली ही थी कि विक्रम चिल्लाया. माला जिन्न की तरह उसके सामने खड़ी हो गयी. लेकिन उसने कहा नहीं कि क्या हुक्म है मेरे आका? बल्कि उसी के अंदाज़ में बोली, 'कहां क्या है? क्यों चिल्ला रहे हो... बहरी तो नहीं मैं?'

विक्रम ने मयंक के जूतों से निकाली गंधाती जुराबें उसके ऊपर निकाल फेंकी, 'देख इन्हें... कितनी बदबू भरी है इनमें और जूते, बैडरूम में रखे जाते हैं...? अरी, जीवन जीने के कुछ नियम-क़ायदे भी होते हैं... कि नहीं..?'

'क्या सोचा है बच्चों के लिए... जीवन संघर्ष से घबरा कर ये भी बन जायें जोगी बाबा... उठा लें हाथ में कमंडल... मांग लें भिक्षा... द्वार-द्वार जाकर... स्टुपिड. कुछ सिखाती नहीं...' विक्रम का चेहरा लाल भभूका हो गया. माला सहम गयी. वह भूल गयी कि उसे विक्रम से रुपए भी मांगने थे. विक्रम खट गेट खोल कर निकल कर स्कूटर

१९६०, पौड़ी गढ़वाल (उ. खं.)
एम. ए. (हिंदी साहित्य)

: प्रकाशन :

सभी प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में कहानियां, कविताएं, लेख, साक्षात्कार आदि प्रकाशित. 'जेम्स वाट की केतली', 'खिलता है बुरांश' कहानी संग्रह प्रकाशित, लौट आओ शिशिर, एक कविता संग्रह तथा मेरी प्रिय कथाएं शीघ्र प्रकाशित. कुछ कहानियों का कन्नड़, उर्दू, उड़िया में अनुवाद, कहानी 'नदी तुम बहती क्यों हो...?' पर मुंबई में मंथन नाट्य संस्था द्वारा मंचन, दूरदर्शन, आकाशवाणी (नजीबाबाद, शिमला, दिल्ली, जयपुर, पौड़ी, देहरादून) से कविता - कहानी, विचारवार्ता आदि का प्रसारण कवि-सम्मेलनों में शिरकत.

: संप्रति :

स्वतंत्र लेखन सोशल वर्क.
'मशाल' सामाजिक संस्था की अध्यक्ष.

स्टार्ट करने लगा. माला बाहर लपकना चाह रही थी, लेकिन फिर सहम गयी. क्या पता विक्रम उसके पिता की सीवन सड़क पर ही उधेड़ना शुरू कर दे... वह जड़ हो गयी. तभी विक्रम फिर अंदर आया, 'माला, मेरा हेलमेट देखना और सुन... घर को रहने दे यों ही... आदमी भेज दूंगा ऑफ़िस से. अब तू जा... और सोच समझ कर डिसीज़न लेना... यहां लाना हो तो अपने बलबूते ही लाना... ऐसी हालत में अपनों का ही सहारा होता है...' माला के धुआंते चेहरे पर एकाएक उल्लास फूट पड़ा. वह सोचने लगी अजीब है... यह आदमी भी पल में तोला पल में माशा. उसे विक्रम पर प्यार उमड़ आया. हेलमेट उसकी खोपड़ी में फ़िट करते हुए वह उसका कॉलर ठीक करने लगी. 'तुम्हारे पास थोड़े रुपये होंगे...? इस बार बच्चों ने कुछ ज़्यादा ही ख़र्च कर दिया. वहां ज़रूरत तो पड़ेगी ही न?' विक्रम ने झट पैंट की जेब

से बटुआ निकाला और पांच सौ का कड़कड़ करता नोट उसकी हथेली में रख दिया. 'अभी यही है... ज़रूरत पड़ी तो दोपहर में बंदोबस्त कर दूंगा. पहुंचते ही फ़ोन पर हालत का ब्यौरा देना... मैं आ जाऊंगा.' वह झटके से मुड़ा. माला का मन भीगने लगा. वह बेवजह शक करती है उस पर... विक्रम जो दिखता है... असल वह नहीं है... बाहर से कड़ियल, भीतर से मुलायम कच्चे नारियल की तरह. माला को लगा विक्रम के दो चेहरे हैं... लेकिन दोनों का सच एक-दूसरे से भिन्न है... हरिद्वार की बस अभी लगी नहीं थी. वह सीमेंट की बेंच पर प्रतीक्षा करने लगी और सफ़र के आते-जाते चेहरों को देखने लगी. माला भीड़ को देखकर सोचने लगी. इतने सारे चेहरे कुकुरमुत्ते की तरह जाने कहां से आते हैं? इनमें कितने चेहरे कल होंगे... क्या पता — पल-पल बिखरी मौत. ज़िंदगी क्षण भंगुर है... तो उसके प्रति ऐसी आसक्ति क्यों? पिताजी जो तलाश रहे थे, वह उन्हें मिला होगा? सर्प के फन से प्रश्न उठकर उसे डंक मारने लगे. अचानक एक युवक को आते देख वह सुखद आश्चर्य से भर उठी — विश्वजीत. लेकिन वह तो...? शत-प्रतिशत विश्वजीत ही है... माला को लगा कि उसने थोड़ी देर पहले एक दुःस्वप्न देखा था — आंख खुली तो झूठ... वह तो है... अतीत नहीं हुआ वह... वही दरमियाना क़द, भरा-भरा जिस्म, गेहुंआ रंग, कुछ गोल–सा चेहरा और घुंघराले बाल माथे पर झूलते हुए... और फिर माला ने देखा वही सुनहरे फ्रेम का चश्मा. माला की इच्छा हुई उसे ज़ोर से पुकारे... तो तुम हो विश्वजीत. और वह उसी तरह उसे अचरज से देखेगा. उसकी पहाड़ी झरने-सी किलकती आवाज़. 'ओऽ... तो आप हैं माला मैडम! पर जा कहां रही हैं आप? कहो तो छोड़ दूं? गाड़ी है मेरे पास.'

माला की आंखें छलकने लगीं — तुम्हारे पास एक अदद ज़िंदगी के लिए सभी सुख थे विशु... पर कमबख़्त ज़िंदगी की चादर ही छोटी पड़ गयी. वह कौन-सी दुनिया है विशु... जहां जाना तुम्हें, प्यारी पत्नी और चिड़िया–सी नन्हीं मुन्नी मासूम बच्चियों की दुनिया में रहने से बेहतर लगा. और ताज़्जुब की बात है न विश्वजीत कि तुम्हारे बिना इस दुनिया को कोई फ़र्क भी नहीं पड़ा. बल्कि और भी सुंदर होता जा रहा है इस दुनिया का चेहरा! माला की इच्छा हुई वह ज़िंदगी छीनने वाले का क्रूर चेहरा उतार फेंके. यही है तुम्हारा न्याय.... घिसट-घिसट कर देह छोड़ने की कामना करने वाले लाखों मनुष्य तुमसे भीख मांगते हैं... और तुम फूल–सी अभी-अभी खिली ज़िंदगियों को छीन लेते हो... क्यों...?

'हरिद्वार की बस चली गयी मैडम?' वह माला से मुख़ातिब हुआ तो माला उसे एकटक देखने लगी पल भर... और फिर अपने ही कंचुल में बैठ गयी.

उसका भीगा चेहरा देखकर युवक सकपका गया. फिर धीरे से बोला, 'आप रो क्यों रही हैं...? फिर उसे लगा उसने बेतुका सवाल पूछा है. कोई रोये या हंसे, यह उसकी ज़रूरत और स्थिति का तकाज़ा है. और वह उसके भीतर झांकने की अनधिकृत चेष्टा भी नहीं कर सकता. उसे अपने प्रश्न का उत्तर नहीं मिला तो उसके चेहरे पर मौन छा गया और वह माला से कुछ दूर बैठ गया. माला तब तक संभल चुकी थी उसने रुमाल से चेहरा पोंछा और उसकी तरफ़ मुड़ी — 'आपका चेहरा धोखा दे गया... दरअसल मैं आपको विश्वजीत समझ बैठी थी... हुबहू वही चेहरा...'

'कहां रहते हैं मेरे हमशक्ल?' उसने पूछा.

'रहते थे... इसी शहर में... नवप्रभात में सीनियर रिपोर्टर थे... बेहद परिश्रमी, ईमानदार, आकाश की ऊंचाई छूने का संकल्प लिये... इस दुनिया को साफ़-सुथरी बनाने का सपना देखते — हर दिल अज़ीज, प्रत्येक के सुख-दुख में उपलब्ध. ऐसा प्यारा इंसान... पिछले साल उसने सुसाइड कर लिया.'

'वैरी सैड...' युवक की आंखों की कोरें भी नम हो गयीं. दरअसल समीकरण गड़बड़ा गया है. इस युग में... जिसकी ज़रूरत दुनिया को होती है, वह चेहरा अदृश्य हो जाता है अचानक. और जिसकी ज़रूरत नहीं होती... मेरा मतलब... हज़ारों क्रिमनल चोर-लुटेरे... इनके चेहरे पर आतंक बन कर हमारे इर्द-गिर्द जमे रहते हैं. माला के कानों में एकाएक एक घुटती चीख़ आकर ठहर गयी... माला को लगा विश्वजीत का गला दबाया जा रहा है. सत्य की वह ओज भरी आवाज़ ख़ामोश हो गयी है... उसकी मृत्यु से कुछ दिन पहले माला से उसकी मुलाक़ात हुई थी. कितना ख़ुश-ख़ुश दिख रहा था उसका चेहरा... उसकी हस्तलिपि की क़िताबें उसके पास हैं. बैग भरकर लाया था वह. 'जब भी संभव हो... इसी तरह वापस कर देना मैडम.' धूल के कणों को उसने रुमाल से पोंछा था, कहां दे माला उसकी क़िताबें, कौन है उसका वारिस...?

ख़्यालों में डूबी माला को पता ही न चला कि कब

लघुकथा

अशुभ बहू

✍ सेवा सदन प्रसाद

पूनम जब से विधवा हुई, तब से ही पूरे परिवार की उपेक्षाओं का शिकार होने लगी थी. सास उसे अशुभ समझती थी, जेठ एक बोझ एवं ननद एक अभागिन. पति की मौत का सबसे ज़्यादा दुःख तो पूनम को ही था पर वास्तविकता पर सब पर्दा डाल रहे थे. सतीश को शराब पीकर मोटर साइकिल चलाने से कितनी बार रोका था उसने. जिस बात से सदा रोका, उस पर कभी ध्यान नहीं दिया सतीश ने. शराब पीकर तेज़ गति से मोटर साइकिल चलाने से ही हुआ ऐक्सीडेंट. अपनी मौत का ज़िम्मेदार तो वह ख़ुद ही था. पर परिवार वाले तो पूनम को ही ज़िम्मेदार मानते थे. सोचते थे — 'अवश्य' ही पति-पत्नी में कुछ कहा-सुनी हुई होगी, कुछ डिमांड रख दी होगी इसने, उलाहना दिया होगा किसी बात का. विचलित मन से ड्राइविंग करना तो ख़तरनाक होता ही है.

एक दिन अचानक ही परिवार का पूनम के प्रति व्यवहार बदल गया. अब उसे अशुभ नहीं माना जा रहा था, बोझ नहीं समझा जा रहा था. अकस्मात अपने प्रति परिवार को विनम्र हुआ देख, हैरान थी पूनम. अब उसका बहुत ध्यान भी रखा जा रहा था. पता चला कि सतीश का दस लाख रुपये का जीवन-बीमा हुआ था. यह बीमा-राशि पूनम को मिलने वाली थी.

६०१, महावीर दर्शन, प्लॉट नं. ११सी, सेक्टर-२०, खारघर, नवी मुंबई-४१०२१०.
मो. : ९६१९०२५०९४. ईमेल : *sewasadanp@gmail.com*

हरिद्वार आ गया. सामने गंगा का विशाल पाट फैला था. युवक उसे अपना कार्ड थमा कर अपनी मंज़िल की ओर मुड़ चुका था. माला के कानों में उसकी आवाज़ गूंजने लगी, 'शांति पाने के वास्ते आकर ठहरता हूं यहां मानसरोवर आश्रम में... लगता है कुछ समय बाद मैं भी संन्यास ले लूंगा... इस दुनिया का चेहरा बड़ा भयानक है मैडम. आश्रम में बड़ी शांति है.'

स्वामी जी रज़िस्टर पर झुके थे. माला ने प्रणाम किया. उन्होंने चेहरा उठाया. उनके तेजस्वी चेहरे पर घनी काली दाढ़ी थी. आंखों में शांति का ठहराव...

'कहां हैं पिताजी?' अब माला पिताजी के साथ थी पूरी तरह. अन्य चेहरों से उसने विदा ले ली थी जो उसका पीछा करते रहे थे... अब तक...

'चाय पी लें आप,' रसोइया पीतल के बड़े गिलास में चाय लेकर खड़ा हुआ तो स्वामी जी बोले, 'आप घर ले जाना चाहेंगी उन्हें?'

माला 'हां' कह कर सात नंबर के द्वार पर गयी जहां स्वामी जी ने उंगली से इशारा किया था. पिताजी की लुंज-पुंज देह तख़्त पर थी. उनके चेहरे पर अंतहीन पीड़ा का हाहाकार था. उनकी आंखें आंसुओं से भरी थीं. वे चुपचाप रो रहे थे. उसको देखते ही उनके चेहरे पर मरियल रोशनी फूटी. उनके पपड़ीदार होंठ खुले, 'तू... आ गयी मेरी बच्ची?' उनके जिस्म में हल्की-सी हरकत हुई. माला की छाती में बगूला-सा उठा और आंखों में डब-डब पानी उमगने लगा. वह पिताजी से लिपटने आगे बढ़ी तो एकाएक मां का चेहरा पिताजी और उसके बीच कूद पड़ा. हमारा खेवनहार हमारी किश्ती को बीच भंवर में छोड़ गया... तो कौन खींचेगा हाथ हमारा... तू ही बता माला, क्या क़सूर था मेरा...? और इनका...? 'मां का चेहरा लिली और छोटे प्रकाश की ओर इशारा कर रहा था, जिनके चेहरे बदहवास उससे पूछ रहे थे — पिताजी, क्यों चले गये दीदी...?'' माला की आंखों से उमड़ती हुई जल धाराएं एकाएक वापस मुड़ने लगीं अपनी जड़ों की ओर. माला कुर्सी पर बैठ गयी. उसने रुमाल से आंखें पोंछनी चाही. वह हैरान रह गयी, उसके चेहरे के ऊपर पत्थर का एक और चेहरा आकार ले रहा था. उसने शून्य में देखते हुए कहा, 'मैं आपको लेने आयी हूं पिताजी...'

बी-३९, नेहरू कॉलोनी,
देहरादून (उत्तराखंड)
मो. : ९७६०५२३८६७
E-mail : bhatt.kusum6@gmail.com

कहानी

ज़ीरो बटा सन्नाटा

नीता श्रीवास्तव

'आज ज़ीरो बटा सन्नाटा मिल गया था... चक्कीवाले महादेव मंदिर में.'

'मंदिर में...? मंदिर में क्या कर रहा था वो?'

'वही... जो तुमने कहा था करने को...'

इनकी तनी हुई भृकुटी देख मैं ठिठक गयी, पर मुझे याद है पूजापाठ करने का तो उससे मैंने कभी नहीं कहा था... तो ऐसा क्या कहा होगा कि ये इतने तन्न-फन्न हो रहे हैं.

ऊंह... इनकी तो आदत ही है मेरी हर बात में मीनमेख निकालने की. कुछ कहो तो क्यों कहा... और न कहो तो... क्यों नहीं कहा. हर हाल में जब इनकी दो बातें सुनना ही हैं तो अपने मन की बात कह लेने में हर्ज़ ही क्या है?

मां की पिलाई घुट्टी है यह... कोई सुने ना सुने, कोई माने ना माने, हमें अपनी बात ज़रूर कहना चाहिए. क्या पता... हमारी एक बात, एक राय, एक सबक किसी के लिए संजीवनी का काम कर जाये.

पांच भाई बहनों में सबसे बड़ी होने की वजह से मां की सख़्त हिदायत थी — 'तुम सबसे बड़ी हो. छोटे भाई बहनों को सलाह देना, समझाना चाहिए और ख़ुद तुम्हें सही दिशा में बढ़ना है. अगर बड़ा बच्चा लाइन पर चल पड़े तो बाक़ी भाई बहन पक्का संभल जाते हैं.'

कुछ बातें मन में घर कर जाती हैं.

ज़ीरो बटा से भी मैंने कुछ कहा होगा तो उसके भले के लिए ही कहा होगा पर मुझे नहीं लगता उसे मैं या मेरी कही कोई बात याद रही भी होगी. अपने मन से या मेरे कहे से अगर पूजा कर भी रहा था तो कोई अपराध तो नहीं कर रहा था?

अपराध...? अपराध तो बेचारे ने तब भी नहीं किया था.

उस दिन अष्मक ड्यूटी के लिए निकल ही रहा था कि मैंने टोक दिया — 'बेटा... मुझे दो आदमी चाहिए दो घंटे के लिए. आज भेज सकेगा क्या...?

— 'कोई ज़रूरत नहीं है बंदियों से घर में काम कराने की.'

हमेशा की तरह उस दिन भी मेरी बात काट दी इन्होंने पर मैं चुप नहीं रह पायी थी — 'अरे बाबा... मैं घर में काम के लिए नहीं बुला रही हूं.'

बेटे-बहू के सामने ये जब भी मुझ पर दहाड़ते हैं मेरा स्वाभिमान आहत होता है. मैं बग़ैर क्षण गंवाये लॉन में निकल आयी. मेरे पीछे-पीछे ठुमकती हुई बनी-ठनी को भी आना ही था. दादी की पूंछ जो ठहरी. उन्हें अंक में भरते ही सारी उदासी फुर्र हो गयी.

बनी-ठनी... मेरी जुड़वां पोतियां... मेरी जान हैं और अपनी जान तो सबको प्यारी होती है. मुझे भी है...

हुआ यूं कि दिन भर लॉन की हरी छम्म दूब पर खरगोश सी फुदकती बनी-ठनी कल नज़र बचा कर पीछे पानी के हौज़ में झांकने पहुंच गयी थीं. तीन साल की हैं. पर तीस जन पर भारी पड़ जायें. इतनी मस्ती.

पानी से लबालब हौज़ और किलकारी मारतीं एक-दूसरे पर छींटे उड़ाती मेरी दोनों परियां. कांप गयी थी किसी अनहोनी की आशंका से फिर भी गुपचुप जाकर दोनों की बांहे थाम बग़ीचे की ओर ले आयी. मेरी जान में जान आयी.

— 'दादी... हमको पानी से खेलना है... दोनों ठिनकने

लगीं.'

— 'हां... चलो फव्वारा चला कर खेलेंगे.' बच्चियां बहल गयीं. दोनों ने जी भर कर पानी में छपाके लगाये. गूंज उठी उनकी हंसी.

मगर मैं कुछ और सोच रही थी. आसपास जंगली मेंहदी और लाल मेंहदी की झाड़ियों की बागड़ से घिरा आधे एकड़ से बड़े कंपाऊंड के बीचों बीच सरकारी बंगला. सामने लॉन में ही है सारी सजावट. गेरू-चूने से रंगी पुती ईटों की क्यारियां और उनमें खिले देशी-विदेशी फूलों की कतारें, सजावटी पत्तेदार पौधे. अमलतास, गुलमोहर के वृक्ष, आम की छांह के नीचे डला स्टील का झूला और झूले में बंधे घुंघरू... बैठते ही रुनझुन बज उठते.

बंगले के दाहिने लॉन में वार्निश से चमकती दो बैंच डली हैं. और एक फ़ोम की गद्दीदार कुर्सी... वह कोना ज़ेलर साहब का ऑफ़िशियल हिस्सा ही समझो. उन बैंचों पर प्राय: जेल प्रहरी, हेडसाहब आदि वाद-संवाद के लिए आते रहते हैं, अगर अष्मक बंगले पर होता है तब...

वैसे भी लंच टाइम, ऑफ़ ड्यूटी, ऑन ड्यूटी शब्द सेना या पुलिस की सर्विस में कोई मायने नहीं रखते हैं. चौबीस घंटे, अलर्ट रहना ही इनका धर्म है, इनकी पहचान है, देश संभालते हैं.

अलर्ट... चौकन्ना-जागरूक या दूरदर्शी... तो गृहिणी को भी रहना चाहिए. आख़िर वह भी घर संभालती है.

मेरी आंखों में बंगले का पिछवाड़ा घूम गया. अष्मक को भैरोगढ़ ज़ेल से ट्रांसफ़र होकर यहां आये छ: माह हो चले हैं. लेकिन अभी भी मेरे मनलायक काम नहीं हो पाया है बंगले में. हो भी कैसे... पिछले कई वर्षों से कोई भी ज़ेलर सपरिवार इस पिछड़े इलाके में रहा ही नहीं... तो घर-घर बन ही नहीं पाया, क्वार्टर ही रहा. एक पलंग, एक मटका-मग्गा और एक टेलीविज़न. ड्यूटी से आये टिफ़िन खोला खाना खा लिया. न्यूज़ वग़ैरह देखी और सो गये. उठे नहाये धोये पहुंच गये ड्यूटी.

अष्मक... इकलौता बेटा है और उसके बच्चे अभी छोटे हैं तो मां–बाप, बीवी-बच्चे सभी उसके गले में टंगे रहते हैं तो घर का चप्पा-चप्पा सजाना हम औरतों की ज़िम्मेदारी ठहरी.

जो कबाड़ था अधिकांश आउट हाऊस में भरकर ताला डाल दिया था मगर सूखे कंटीले झाड़ झंखाड़, लोहा-

१४ मार्च, १९५५

एम. ए. समाजशास्त्र, पत्रकारिता प्रशिक्षण

: लेखन :

१९७६ से लेखन प्रकाशन प्रारंभ किंतु १९८१ में विवाह, संतान, ससुराल आदि की व्यस्तता से १९९३ तक प्रतिवर्ष औसतन एक या दो कहानी लिखने का समय मिल सका अनुकूल पारिवारिक माहौल एवं बिटिया तथा पति के प्रोत्साहन एवं सहयोग से पुनः नियमित लेखन आरंभ हुआ, जो आज तक जारी है.

: प्रकाशन :

तीन कथा संग्रह - जो सच है, पानी-पानी एवं अमृत दा का ढाबा. अब तक विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में१०० कहानियाँ एवं १५० से अधिक लघुकथाओं के अलावा सामाजिक लेखों का प्रकाशन. रविवार (आनंद बाजार कलकत्ता), सारिका, नीहारिका, साक्षात्कार हंस, संबोधन, अक्षरा, अहा! ज़िंदगी, नई दुनिया, दै.भास्कर में.

: अनुवाद :

कहानियों का मराठी, सिंधी, पंजाबी एवं एकमात्र लिखे नाटक का गुजराती में। विभिन्न संस्थाओं एवं पत्रिकाओं द्वारा पुरस्कृत एवं सम्मानित।

लंगड़ से पिछवाड़ा अटा पड़ा था. 'पिछवाड़े की साज सज्जा कौन देखता है.' वाली मानसिकता न होने के कारण वह बीहड़ देख कर आये दिन मेरा दिमाग़ भिन्ना जाता था पर उस बीहड़ के बीचों बीच पानी की खुली हौज़ तक बनी-ठनी का पहुंचना... डराते हुए खतरे का संकेत भी दे रहा था. बस... इसलिए मैंने बेटे से आदमी भेजने को कहा था किंतु वह भी जवाब दिये बिना चला गया.

एकांत पाते ही मैं पूजाघर में जा बैठी तो आसपास बनी-ठनी भी पालथी मार नन्हें-नन्हें हाथ जोड़ कर चिपक बैठ गयीं. सारा क्रोध नन्हीं छुअन से छूमंतर हो गया. दोनों भक्तिनों का रोज़ का यही क्रम है. मैं भगवान की कटोरी में प्रसाद निकालकर आरती पूरी कर भी नहीं पाती हूं कि दोनों सारी मिश्री गपक जाती हैं.

लाख समझाऊं कि आरती से पहले प्रसाद नहीं खाते पर कोई असर नहीं... डांटती हूं तो ऐसे भोलेपन से मुझे देखती हैं मानों सब समझ गयी हों. बालपन की निश्छल आंखें.

पूजा ख़त्म होने से पहले ही गेट की सांकल की झनझनाहट सुन मेरे कान खड़े हो गये कि विराज ने द्वार से बोला — 'अम्मां... बाहर विजयेंद्र आया है.'

देखा... विजयेन्द्र... इस उपज़ेल का एक जेल प्रहरी. दो आदमियों के साथ खड़ा था लॉन में. एक आदमी को तो मैं पहचानती हूं... दिवाकर को. कुछ महिनों की सज़ा शेष बची है मगर अच्छे बर्ताव के कारण बंदी हों या अधिकारी... सबको अच्छा लगता है. हर काम के लिए तत्पर... पूरे परिश्रम के साथ.

पर यह दूसरा आदमी... यानी एकदम नौजवान. इसे तो पहली बार देख रही हूं.

— 'विजयेंद्र... ये ?' पूरा प्रश्न करने से पहले ही परिचय मिल गया — 'मैडम... ये नया पंछी आया है.'

इतना परिचय काफ़ी था. मैं सीढ़ियां उतर उन्हें पीछे की ओर आने का संकेत कर पानी के हौज़ तक पहुंच गयी... अभी तक अष्मक की पोस्टिंग कहीं भी हुई हो... इस घर का क़ायदा बरकरार रहा... कभी भी बंदी हों या ज़ेल के निम्न श्रेणी कर्मचारी, घर के काम के लिए दहलीज़ के अंदर नहीं आये.

आज भी नहीं आये... सरकारी बंगले में पड़ा बरसों का कबाड़... उसे ही व्यवस्थित करने के लिए बुलवाने पड़े आदमी. देखा... यह नाख़ुश थे.

इनकी नामर्ज़ी से आज तक मैंने पत्ता भी नहीं हिलाया. मन हुआ कि अष्मक को फ़ोन कर दूं — 'आज नहीं फिर कभी हो जायेगा ये काम.'

टेलीपैथी इसी को कहते हैं. मेरे मन की बात पहुंच गयी अष्मक तक... विजयेंद्र का फ़ोन बज उठा.

सुनते ही वह तुरंत दोनों क़ैदियों को लेकर चला गया. ज़ेल में अचानक किसी बंदी को तुरंत सिविल हॉस्पीटल ले जाना है. कुछ देर बाद ही एम्बुलेंस ज़ेल परिसर से निकल गयी.

परिस्थितिवश मेरा काम नहीं हुआ तो शायद इन्हें भी बुरा लगा तो शाम होते ही कुरता-पज़ामा पहन बाल ओंछते शीशे में से ही मुझे देख बोले — 'चलो... धोती बदल लो, थोड़ा घूम कर आते हैं.'

मेरे लिए नयी साड़ी पहनना, घूमने जाना इतना आसान है क्या? पहले दोनों गिलहरियों की फ़्रॉक निकालीं. नारंगी पर सफ़ेद लेस वाली घेरदार फ़्रॉक फिर अपने लिए साड़ी निकाली — वह भी नारंगी. ज़रूरी है वरना दादी की साड़ी के रंग वाली फ़्रॉक पहनने को फ़र्श पर लोट ऐसी मचल जायेगी कि मनाना मुश्किल.

हमें निकलते देख दायें-बायें के क्वार्टर से भी बच्चे लिये मांएं सड़क पर टहलने लगतीं. वही चेहरे... वही दिनचर्या... कुछ ऊबी-सी... अकेली-सी... समाज से कटी हुई ज़िंदगी.

ज़ेल... आख़िर है तो ज़ेल ही. बाहरी दुनिया की झलक तो क्वार्टरों में रहने वाले परिवार तक नहीं देख पाते हैं खिड़की से. ज़ेल परिसर... ऊंची-ऊंची मज़बूत दीवारों से घिरा... कंटीले तारों की बागड़. दोनों ओर पर बने तृतीय-चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों के मंझोले क्वार्टर और गेट के दायीं और ज़ेलर... का बंगला, बंगले से पांच गुना बड़ा कंपाऊंड.

गिने-चुने परिवार... एक दूसरे से पूर्ण परिचित मगर अपनी सीमाओं में बंधे हुए... एक निश्चित दूरी बनाये हुए.

बीचों बीच ज़ेल... उसकी दीवारों की ऊंचाई देखने के लिए सिर उठाओ तो ऊपर पानी की विशालकाय टंकी पर बैठे पचासों पंछी नज़र आते हैं. ज़रा-सी आहट और एक साथ उड़ते कबूतर के झुंड... मैं पंछियों की स्वच्छंद उड़ान देख भावुक हो उठी. शाम होते ही पंछी अपने बसेरों पर लौटने को कैसे बेताब हो जाते हैं.

— 'नया पंछी...' मेरी आंखों में उसकी मासूम सूरत घूमने लगी. विजयेंद्र के दिये परिचय पर बिल्कुल अछूती-सी मुस्कान आकर गुम हो गयी थी. आंखें एकदम भाव शून्य. लापरवाह उम्र. मैंने पहली बार उस नौजवान को देखा, वह मेरा मुख ऐसे निहार रहा था मानो बालक मां को देख रहा हो. मेरा मन उसके प्रति ममता से भर उठा.

मैं उसे काम समझाने ही वाली थी कि रुक गयी... नया पंछी तो कोई संबोधन नहीं हुआ — 'क्या नाम है तुम्हारा... बेटा?'

— 'ज़ीरो बटा सन्नाटा...' विजयेंद्र ने ही जवाब दिया इस प्रश्न का भी... और ठठाकर हंस दिया.

जानती हूं ज़ेल में भी टाइटल देने का प्रचलन है.

फ़र्क इतना है क़ैदियों को खुलेआम टाइटल से संबोधित कर दिया जाता है और ज़ेल अधिकारियों को दबी जुबान में. इसी विजयेंद्र ने बताया था पिछले ज़ेलर को 'छुईमुई' कहा जाता था... ज़रा ज़रा सी बात पर नर्वस हो जाते थे. मुंह लगा है विजयेंद्र... मगर चाहकर भी मैंने नहीं पूछा कि अष्मक का क्या नाम धरा है... एक निश्चित सीमा ज़रूरी है... ऑफ़िस हो या घर की.

अष्मक... मैंने दिया है उसे ये नाम... वेद-पुराण, गीता-कुरान... सब छान डाले थे तब जाकर मिला यह नाम... अश्म यानी पत्थर. अष्मक यानी गहरे नीले रंग का एक फूल, जो सदियों में एक बार खिलता है समुद्र किनारे की चट्टानों पर. भगवान श्रीकृष्ण को अष्मक नाम से भी पुकारा गया है.

हे प्रभो... उच्चारण के साथ बेडरूम में घुसी... पाया, ये जग रहे हैं शायद दिन के बर्ताव की ग्लानि अब भी शेष थी. सुलह के अंदाज़ में बोले — 'आज का दिन उधेड़बुन में गया. शांत चित्त हो सो जाओ... हो जायेंगे सब काम... आज नहीं तो कल.

और हो ही गये थे सारे काम. मेहनत भी ख़ूब पड़ी थी ज़ीरो बटा पर... सारी सूखी झाड़ियां इकट्ठी करके जला रहा था. धूप के साथ आग की लपटों के आगे भी खड़ा निर्विकार आज्ञाकारी बालक की तरह कांटे-पत्ते जल जाने की राह तक रहा था.

पूरा बदन पसीने से तर इतना कि उसकी सफ़ेद फतुही कंधों पर गीली होकर चिपक गयी. मुझसे देखा न गया. इशारे से आम की छांह में बुला लिया... ठंडा पानी दिया पीने को. उसने पहले कुछ छींटे चेहरे पर मारे फिर ऊंचा मुंह करके गट्गट् पी गया पूरा लोटा.

झूले के पास ज़मीन पर बैठ गया नीचे सिर कर आदत जो ठहरी... मैं शुरू हो गयी... मेरी प्रश्नावली तो तैयार थी.

— 'कितने महीने की सज़ा हुई है....?'

— 'कोई नी...सात दिन के लिए अंदर किया है.'

— 'किस अपराध में...?'

— 'साथ देने के...' सिर उसका नीचे ही रहा. सुनकर मेरे मन को राहत मिली. उम्र और अनुभव के हिसाब से आदमी की कुछ पहचान तो मुझे भी है. इसे इस स्थान पर देखकर ही मुझे लगा था... ग़लत जगह आ गया है.

और वाकई... वह तो फ़िजूल में ही फंस गया था उस झगड़े में. न तो उसकी ज़मीन जायदाद थी, न वह बंटवारे की बात कर रहा था, न हिस्सा मांग रहा था.

उसकी ग़लती तो बस इतनी, कि वह उस ज़मीन की मेड़ों पर रोज़ अपनी कबरी गाय चराने-घुमाने ले जाता था.' रोज़-रोज़ किसी से मिलो... तो यारी हो ही जाती है... 'कहते हुए उसने सिर उठाकर मेरी ओर देखा... उन आंखों में निश्छल प्रेम नज़र आया.

— 'बस... यारी में साथ देना पड़ा.' सगे काका ताऊ के बीच आये दिन तू-तू, मैं-मैं. एक की फ़सल दूसरा ढोरों से घुंदवा दे तो दूसरा खड़ी तैयार फ़सल में आग लगा दे. उस दिन घमासान हो गया भरी दुपहरी में. वह तो अपनी कबरी गाय को हकाल कर लौट ही रहा था कि लाठी-बल्लम लेकर दूसरी पार्टी के दस पंद्रह लोग आ गये और उसका दोस्त अकेला खेत पर... दौड़ लगायी सरपट और दोस्त के घरवालों को ख़बर दी... उनकी भी तैयारी ख़ूब भंजी लाठी-पिराने. भाई-भाई पर, एक दूसरे को मारने-मरने को उतारूं.

वह बच गया... अगर गाय हकाल घर निकल लेता तो... पर गुमानसिंह के सिर से बहता ख़ून देख भी भाग आता तो दोस्ती नाम पर धब्बा लग जाता. उसने भी जी जान लगा दी बीच बचाव करने में...

फूटे, दो चार के सिर... हाथ पैर भी टूटे, एक दो के पर छूटा कोई नहीं. न मारनेवाला... न मार खाने वाला. न दोषी, न दोषी का साथ देने वाला. पुलिस केस बना... और एक सवाल के लपेटे में फंस गया वह भी...

— 'दूसरी पार्टी को ख़बर किसने दी.. उकसाया किसने?'

— 'इसने...' खेल ख़त्म. ग़रीब को तो सज़ा काटनी ही पड़ेगी. ले देकर तो पैसे वालों के मामले सुलट जाते हैं.

मां छुट्टी मज़दूरी करती है. बप्पा रेलवाई में कच्चे में गैंगमेन हैं. तीन बहन-भाई छोटे हैं. मुश्किल तो होती है पर अब कंट्रोल से एक रुपये किलो गेहूं-चावल जबसे मिलने लगे हैं उसकी टक्कर लग जाती है. पैंतीस-चालीस किलो अनाज मिल जाता है. नमक-शक्कर के साथ पांच लीटर घासलेट भी मिलता है. चल रही है गाड़ी धीरे-धीरे... धका रहे हैं मां बप्पा.

— 'और तू... तू क्या करता है...?'

— 'कबरी को मैं ही तो ले जाता हूं चराने.'

—'मतलब....?'

— 'गाय चराता हूं.' बड़े भोलेपन से समझाते हुए उसने मेरे मतलब को हल कर दिया.

ओफ्हो... मैंने सिर थाम लिया. बहुत बड़ा काम करता है... जो शान से बता रहा है... 'गाय चराता हूं.' ग़ुस्से और तीव्र व्याकुलता से मैंने उसे घूरा मगर उधर कोई असर नहीं था. वही भावशून्यता... सही नाम दिया है, इसी नाम के लायक है यह ज़ीरो बटा सन्नाटा.

महीनों बीत गये उसे रिहा हुए पर जब भी पानी की हौज़ पर नज़र जाती है... याद आता है वो.

बहुत मेहनत की थी उस रोज़ उसने ये जंगल संवारने में. हौज़ पर पहले लोहे की रॉड जमायी और उन पर पत्थर की भारी सिल्लियां जमा कर पैक कर दिया था. झाड़ बुहार कर चकाचक कर दिया चप्पा-चप्पा. नंगे पैर भी घूमो तो न कांटा चुभे न कंकड़.

ये तो... तारीफ़ भी करते हैं उसकी... मज़ाक के लहजे में 'ज़ीरो बटा सन्नाटा यानी सफ़ाचट. यथा नाम तथा काम... ऐसा साफ़ भक्का पिछवाड़ा कि सुई भी गिरे तो मिल जाये....'

□

आज वो ख़ुद मिल गया इन्हें मंदिर में, दिन भर मेरे मन में कुलबुलाहट होती रही... मंदिर में...? क्या कर रहा होगा?

ये भी शायद बेचैन थे बताने के लिए... तभी तो शाम को लॉन की दूब पर चहलक़दमी करते हुए अष्मक की कुर्सी के पास क्षण भर रुके... मेरी ओर देखा और बोले अष्मक से — 'आज वो छोकरा... ज़ीरो बटा... मिल गया था मंदिर में.'

— 'मंदिर में...? मंदिर में क्या कर रहा था वो?' अष्मक की तुलना में मैं ज़्यादा उत्सुक थी जानने को. पैर टेक कर झूला रोक दिया मैंने.

— 'दर्शन करके सीढ़ियां उतर रहा था कि पुकारा किसी ने... पापाजी... पापाजी, घूम कर देखा तो ज़ीरो बटा महाराज.'

न दुआ न सलाम... लगा बक बक करने... अपनी वीरगाथा सुनाने... कि महादेव मंदिर में तो बारहों मास काम चलता है... वह भी बाहर आते ही यहां दिहाड़ी पर लग गया है. रंग-रोगन, पुताई-सफ़ाई के साथ अब दीवारों में पुट्टी भरना भी सीख गया है. बाहर आते ही एक रोज़ को भी घर नहीं बैठा है... और फिर लगा, किसी के नाम की माला जपने...

मुलाकात का क़िस्सा सुनाते हुए ये क्षण भर को रुके फिर मुस्करा कर मुझे देखने लगे. कहने लगा... 'भगवान जो भी करते हैं, अच्छा ही करते हैं. अब रोज़ संजा को अम्मा की हथेरी पर दो चार सौ रखता हूं. निठल्ला ही घूमता रहता. उस दिन मां जी की एक फटकार से सम्पट पड़ गयी... कि मेहनत की रोटी ही मीठी होती है.

मां जी ने बहुत ग़ुस्से में कहा था — 'गाय चराने से ज़िंदगी नहीं चलती. इज़्ज़त से जीना है तो काम कर... चार पैसे कमाकर बूढ़े मां-बाप का आसरा बन... काम करने वाले के लिए काम की कमी नहीं है दुनिया में... छोटा-बड़ा जो भी काम मिले... शुरुआत तो कर... जवान आदमी है... आकाश-पाताल एक कर दे... यही तो दिन हैं काम करने के.'

मैं इनकी बातें सुन अवाक थी. ख़ुशी से मन में हिलोरें उठने लगीं, क़िस्सा ख़त्म करते हुए ये मेरी ओर मुड़कर बोले — 'ख़ास तौर से तुम्हारे लिए मैसेज़ भेजा है उसने... कि मां जी को याद से बता देना... कि उन्होंने जो कहा था, वह मैं करने लगा हूं.'

सुनते ही मैं मुस्कुराने लगी. मां सही कहती थी — सही वक़्त पर सही बात अवश्य कह देना चाहिए. कौन जाने, फिर मौक़ा मिले... मिले... ना मिले? हो सकता है हमारी एक बात, एक राय, एक सबक किसी के लिए संजीवनी का काम कर जाये.

मेरी आंखें डबडबा गयीं... देख कर ये मेरी पीठ थपथपाते हुए बोले — 'सचमुच... दो बात समझाकर तुमने तो उसका जीवन संवार दिया.'

इतनी बड़ी उपलब्धि का श्रेय मैं कैसे ले सकती थी..? पसीना तो वह बहा रहा है... इस शाबासी का असली हक़दार भी वही है. मेरी आंखों में उसकी मासूम सूरत घूमने लगी... निर्मलता लिये भाव शून्य आंखें. आश्चर्य... उसे मेरी कही बातें याद हैं.

वाक़ई... कुछ बातें मन में घर कर जाती हैं.

२१४, देवपुरी कालोनी,
महू (म. प्र.)४५३४४१
मो. ९८९३४०९९१४.

कविता

दोगला

✍ डॉ. सुरेश उजाला

माफ़ करना
यही है वो देश
जहां रोटी के रास्ते
फिरता है आदमी
मारा-मारा.

होता है जहां
टुकड़े-टुकड़े पर झगड़ा
और
झूठन का बंटवारा,

जहां रोता है
पेट को पीठ
और
पीठ को पेट पकड़कर

जहां ज़िंदा है आदमी
पेड़ों की जड़
और
छाल खाकर,

यही है वो देश
जहां धसी आंखें
झुकी कमर
जर-जर शरीर
ढोता है ईंट-पत्थर.

जहां सूखी आंतों के लिए
भुने दाने
और
पानी पीकर
कल की आस में
जीता है आदमी.

जहां ढल जाता है यौवन
घूंघट की आड़ में
भूखा-प्यासा,

जहां लगा जाता है दाग़
रोटी का एक टुकड़ा
निर्दोष शरीर में
और
बना जाता है दोगला
जमाने की नज़रों में

१०८, तकरोही, पं. दीनदयाल पुरम मार्ग, शब्देश नगर,
लखनऊ - २२६०२८. मो.: ९४५११४४४८०

लघुकथा

मॉर्निंग वॉक

✍ डॉ. नरेंद्र नाथ लाहा

मित्र के बड़े भाई उन लोगों में से हैं जो नियम से मॉर्निंग वॉक पर जाते हैं. यह क्रम पिछले तीस साल से बरकरार है. समय भी बिल्कुल निश्चित था. सुबह पांच बजे निकल जाना और साढ़े छः बजे तक घर लौट आना. हम लोग उनकी मिसाल देते हैं. स्वस्थ रहना और समय की पाबंदी उनके रग-रग में है.

पिछले कुछ दिनों से समय की पाबंदी नहीं हो रही थी. भाई साहब के लौटते-लौटते नौ बज जाया करते. उनसे किसी के पूछने की हिम्मत नहीं थी कि ऐसा क्यों हो रहा है. हां, यह बात सच थी कि कुछ दिनों पहले उनके परिवार के साथ एक हादसा घट गया था. उनका पुत्र बाईक पर जा रहा था, रोशनी थोड़ी कम थी, गड्ढा दिखा नहीं, सो वह उसमें घुस गया. काफ़ी चोटें आयीं. सात दिन के इलाज़ के बाद भी उसे बचाया नहीं जा सका. उसकी मृत्यु हो गयी.

भाई साहब की दिनचर्या यथावत चलती रही. एक दिन मैंने और मित्र ने तय कर लिया कि यह पता लगाया जाये कि भाई साहब को देरी क्यों हो रही है? उनका पीछा किया गया. अपनी मॉर्निंग वॉक ख़त्म करके वे सड़क के गड्ढे भरने में व्यस्त दिखे. आगे बढ़कर हम लोगों ने पूछ ही लिया. उन्होंने नपा–तुला उत्तर दिया, 'जबसे मेरे बेटे की मृत्यु हुई है तब से सोच रहा था कि ऐसा क्या किया जाये जिससे आगे यह हादसा और किसी के साथ न घटे. सो मॉर्निंग वॉक पर मैं गड्ढे भरता जाता हूं. इसीलिए मुझे घर आने में देरी होती है. मुझे लगता है कि मैं अपने बेटे को सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित कर रहा हूं.'

२७, ललितपुर कॉलोनी, डॉ. पी. एन. लाहा मार्ग, ग्वालियर-४७४००९ (म. प्र.)

कहानी

हत्यारिन

डॉ. पूरन सिंह

'हैलो'

'हैलो कौन बोल रही हैं.'

'चाची बोल रही हूं गांव से.'

'अच्छा, बोलो चाची, कैसी हो.'

'ठीक हूं.'

'तुम कैसे हो.'

'ठीक हूं मैं भी.'

'लला, एक बात के ले फ़ोन करो तो तुमसे.' चाची बोली थी.

'हां बताओ चाची क्या बात है. कुछ परेशान सी लग रही हो.' मैंने पूछा था.

'परेशान का लला, तुमायी भैन अब बड़ी होइ गयी है.... कहूं लड़का देखो... शादी करनी है.' फिर चाची की आवाज़ धीमी होने लगी थी, 'आजु वे होते तो...' फिर चाची की आवाज़ भर्राने लगी थी, '... लला आजु तुमाए चाचा होते तो काहे को दुख होतो... वे हमें सबे बीच मझदार में छोड़कर चले गये, लला... बड़ी याद आती है उनकी... दो-दो लड़कियां एक लड़का... कैसे पार लगेगी ज़िंदगी...' फिर लगभग रोने से लगी थी चाची,' ... लला जब तक वे रहे काहू बात को दुख नाय थो... अब तो जिनगी नरक सी लगती है. उन्ने हमें काऊ तरह को दुख नाइ दओ लला.' फिर चाची थोड़ी सी संभली थी. '... लला हमें खूब यादि आती है उनकी. मैनेहूं उन्हें कतई दुख नाहि दओ. पति तो परमेश्वर...'

नहीं सुन सका था मैं इसके आगे. मुझे लग रहा था मानों मेरे कानों में कोई पिघला हुआ शीशा उड़ेल रहा हो. मैंने फ़ोन काट दिया था. और अब फ़ोन को देखे चले जा रहा था. फिर न जाने मुझे क्या हुआ कि मैंने रिसीवर उठाया और जोर से पटक दिया था. बाद में संभला था अरे यह क्या कर रहा हूं मैं. फ़ोन पर ग़ुस्सा कैसा? यह तो निर्जीव वस्तु है. चाची का ग़ुस्सा फ़ोन पर क्यों?

चाची... हां...हां... चाची ही तो. आज चाची फ़ोन पर रो रही थी. उनकी बातें सुनकर कतई दुख नहीं हुआ था मुझे. एक अजीब सी घिन हो रही थी उन पर. अपने आप को शांत करना चाह रहा था परंतु न जाने क्यों ऐसा लग रहा था कि चाची को फ़ोन पर पूछूं, 'चाची लोगों को क्या समझती हो... सारी दुनियां के लोग मूर्ख हैं क्या... सच जानता नहीं है कोई... चाचा के साथ तुमने जो किया... कौन नहीं जानता.' बैठ गया था. पर बैठना कैसा. लगा था कोई कुरेद रहा हो मुझे. और उसी कुरेदने में चाचा का भोला और मासूम सा चेहरा हवा में झूलने लगा था और मुझसे बार-बार पूछ रहा था, 'क्यों होते हो परेशान... मैं था तब भी मेरी दुर्दशा देखकर ऐसे ही परेशान होते थे तुम और आज भी...' मैंने चाचा के चेहरे को हाथ से हटा दिया था मगर वह हटा नहीं था... कभी उनकी आंखों में आंसू दिखायी देते तो कभी वे खिलखिलाकर हंसने लगते थे. मैं चीख़ पड़ा था, 'चाचा.' और मेरे चीख़ने के साथ ही चाचा का हवा में झूलता चेहरा ग़ायब हो गया था. चेहरा तो ग़ायब हो गया था लेकिन... लेकिन... मैं... मैं अब उन्हें ढूंढ़ने लगा था...

चाचा और मैं लगभग बराबर के थे. थोड़ा-बहुत अंतर रहा होगा मुझमें और उनमें. थोड़े से बड़े रहे होंगे चाचा... साल, दो साल. चाचा और मैं एक ही कक्षा में पढ़ते थे. कक्षा आठ. हां, हां ठीक-ठीक याद आया. हम दोनों ही आठवीं में पढ़ते थे. चाचा पढ़ने में सामान्य से भी कम थे और मैं ख़ूब होशियार.

चाचा और मैं कक्षा एक से लेकर आठवीं तक साथ-साथ पढ़े थे. मैं अपना काम करता और चाचा का भी काम कर देता था. आठवीं तक मैं ही उन्हें खींचकर ले आया था नहीं तो उन्होंने तो पांचवीं में ही हथियार डाल दिये थे, 'मुझसे नहीं पढ़ा जाता, रामवीर.' 'क्या यार कम से कम दसवीं तो कर लो... कहीं चपरासी-अपरासी बन जाना... दो रोटी का जुगाड़ हो जायेगा.' 'मेरा मन पढ़ने में लगता ही नहीं. मैं क्या करूं.' कहने लगते थे चाचा. मैं चोरी छिपे इम्तिहानों में उन्हें नकल करवा देता सो वे पास लायक नंबर ले आते थे और यही क्रम चलते-चलते आठवीं पास कर ली थी चाचा ने. चाचा में चालाकी, धूर्तता या मक्कारी कतई नहीं थी. ओस की बूंद-सी निश्छलता और छल तो कतई पास नहीं आया था चाचा के. वैसे तो हम लोग दोस्त थे लेकिन मुझे जब कभी मज़ा लेना होता तो मैं उन्हें चाचा बुलाने लगता था. वे थोड़े से नाराज़ होते, 'चाचा नहीं मेरा नाम लिया करो रामवीर.' फिर मैं चाचा के गले में बाहें डाल देता और बहुत प्यार से गुइयां-गुइयां बना लेता था. चाचा फिर खिले गुलाब से महकने लगते थे.

चाचा तीन भाई थे. ख़ूब ज़मीन थी उनके पास. घर में अन्न-धन की कोई कमी नहीं थी. ऊपर के दोनों भाइयों की शादी हो गयी थी. उनके अपने-अपने परिवार थे.

चाचा ने आठवीं के बाद पढ़ाई छोड़ दी लेकिन मेरी दोस्ती नहीं छोड़ी थी.

'एक बात बतायें तुम्हें.' उन्होंने मेरा कान अपने मुंह के पास ले जाकर कहा था.

'बताओ चाचा.'

'तुमने फिर चाचा कही.'

'अच्छा बताओ गुइयां.'

'बड़े भइया कह रहे थे वे मेरी शादी करने वाले हैं.' इतना कहकर चाचा ऐसे लजाये थे जैसे वे चौदह साल की सुकन्या हो.

'मजे हैं तुमाए तो भैया...' फिर मैं थोड़ा सा सीरियस हुआ था, 'अभी तुमारी तो उम्र बहुत कम है. होने वाली चाची तो बिलकुल लड़की होइगीं. इतनी जल्दी क्या है.'

'भइया कह रहे थे. अब उनकी बात को मना थोड़े ही करना है. बड़ो भइया बाप दाखिल.' चाचा अपने बड़े भाइयों की बहुत इज़्ज़त करते थे.

हम दोनों की इतनी बात हुई थी फिर वे चले गये थे.

१० जुलाई १९६४ ; कुरावली, मैनपुरी.
शिक्षा : एम. ए. (अंग्रेजी-हिंदी), पीएच. डी.

: प्रकाशन :

लगभग सभी छोटी, बड़ी और स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं में कहानियां, लघु कथाएं, कविताएं, यात्रा संस्मरण, लेख, साक्षात्कार प्रकाशित. पूर्वोत्तर राज्य की लोक कथाओं, लघुकथाओं, उपन्यास अंशों आदि का अंग्रेज़ी से हिंदी में अनुवाद प्रकाशित. ५५० से ज़्यादा लघुकथाएं, ८० से ज़्यादा कहानियों और २०० से अधिक कविताओं का सृजन, उड़िया/मराठी/पंजाबी/बंगला/उर्दू आदि में विभिन्न रचनाओं का अनुवाद प्रकाशित.

: पुरस्कार :

अनेक कहानियां व लघुकथाएं विभिन्न प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत.

: संप्रति :

भारत सरकार में प्रथम श्रेणी अधिकारी.

और कुछ समय बाद ही उनकी शादी की तैयारियां शुरू हो गयी थीं. ठीक दो महीने में ही चाचा की शादी हो गयी थी. जब चाचा की शादी हुई थी तब चाचा सोलह साल के थे और चाची तेरह साल कीं.

गर्मियों के दिनों में जब दोपहर बहुत बड़ी होती है तब चाचा, चाची और मैं इकिया-दुकिया, गुट्टा और कंचा तो कभी छिपा-छिपाई और आस-पास खेला करते थे. चाचा हमेशा हारते थे. चाचा शायद हारने के लिए ही बने थे. चाहे खेल हो या ज़िंदगी का खेल. खेल में एक शर्त भी हुआ करती थी जो जीतता था वह दोनों हारने वाले साथियों को पीटता था. चाची अपना दांव कभी नहीं छोड़ती थीं चाहे चाचा हों या मैं. मैं भी कम नहीं था. मैं भी जीतने पर चाची को तो ज़रूर ही पीटता था लेकिन चाचा को मैंने कभी नहीं

पीटा. चाचा मेरे सामने अपने दोनों हाथ जोड़कर खड़े हो जाते तो मैं उनके दोनों हाथों को अपने हाथों में भर लेता था. तभी तो चाची कहा करती थीं, 'खेल में दोस्ती नांहि चलेगी हां बताये दे रहे.' और देखो मैं चाचा के साथ दोस्ती कहां निभा पाया. चाचा दूसरी दुनिया में चले गये और मैं...

गुटिया-गुट्टा, कंचा, आस-पास और इकिया-दुकिया जैसे खेल-खेलते हुए हम सब कब जवान हो गये पता ही नहीं चला. चाचा ने खेत का काम धंधा संभाल लिया और मैंने ग्रेजुएशन कर लिया और चाची... चाची के पिता स्कूल मास्टर थे. प्राइमरी में अध्यापक थे. उन्होंने चाची को नकल-वकल करवाकर ख़ूब अच्छे नंबरों से बारहवीं पास करवा दी थी. तब आज जैसा नहीं था. अगर किसी लड़की के ख़ूब अच्छे नंबर होते थे तो उसको टीचर ट्रेनिंग के लिए चुन लिया जाता था. कोई परीक्षा नहीं होती थी. चाची के पिताजी ने दिस-दैट करके चाची का चयन टीचर ट्रेनिंग में करवा लिया था. चाची टीचर की ट्रेनिंग करने लगी थी. चाचा खेती बाड़ी देखने के साथ-साथ चाची की देखभाल भी करते थे.

टीचर ट्रेनिंग जिला मुख्यालय पर होती थी. मैं तब एम. ए. कर रहा था जिला मुख्यालय पर. दो साल की ट्रेनिंग थी. चाचा अपने घर से गेहूं, गल्ला, सब्ज़ी ले जाते और चाची की पूरी देखभाल करते थे. ट्रेनिंग के दौरान ही पता चला कि चाची पेट से है. चाचा की ख़ुशी का पारावार नहीं था, 'रामवीर भगवान देता है तो छप्पर फाड़कर देता है. अब तुम देखो, अब तुम्हारी चाची के बच्चा होने वाला है और कुछ ही दिनों में उसकी ट्रेनिंग पूरी हो जायेगी फिर चाची, मेरा मतलब तुम्हारी चाची की नौकरी लग जायेगी. मज़ा आ जायेगा. चाचा निष्कपट, छल, द्वेष और चालाकी से कोसों दूर खिलखिलाकर हंस पड़े थे लेकिन.. लेकिन मज़े नहीं आये थे.

समझो चाचा की ख़ुशियों को ग्रहण लग गया था. चाची ने बेटी को जन्म दिया. अब चाचा की ड्यूटी बेटी की देख-भाल करने के लिए लगा दी गयी थी. चाचा पूरे-पूरे दिन अपनी बेटी को देखते थे और चाची ट्रेनिंग कर रही थी. चाची की ट्रेनिंग का पहला साल था. उनकी परीक्षा पास में ही थी. चाची नकल करके बारहवीं तो पास कर गयी थीं लेकिन सही तरह से चाची को लिखना भी नहीं आता था. चाची ने चाचा से कहा होगा फिर चाचा ने मुझसे कहा था, 'रामवीर तुम अपनी चाची की मदद कर देना इंतिहान में.' मेरे लिए ये सब सामान्य काम था. मैंने चाची के सारे पेपर लिखे थे. उन दिनों प्रशिक्षण संस्थान के प्रिंसिपल मिजाजी लाल शर्मा थे. उन्हें मैंने हर पेपर के सौ रुपए के हिसाब से पैसे दे दिये थे सो उन्होंने कान भी नहीं हिलाया था. सही समय पर परिणाम आया और चाची के सबसे ज़्यादा नंबर आये थे. यही प्रक्रिया दूसरे साल भी अपनायी थी. चाची अच्छे नंबरों से पास हुई थीं.

चाचा ने पूरे दो साल तक बेटी की देखभाल ही नहीं की बल्कि चाची को भी किसी तरह की असुविधा नहीं होने दी. चाचा घर की सब्ज़ी, रोटी करते थे. चाची के कपड़े धोते थे. किराए का कमरा था सो झाड़ू, पोंछा, बरतन सभी कुछ चाचा की ज़िम्मेदारी थी. चाची ट्रेनिंग करके कमरे पर आतीं तो चाचा पर उल्टा रुआब और दिखाती थीं.

इसी दौरान चाचा के दोनों भाइयों ने चाचा की खेती बाड़ी में बेईमानी कर ली. दोनों भाइयों ने न जाने कैसे हिसाब लगाया कि चाचा को मात्र सात बीघा ज़मीन ही मिली जबकि ज़मीन तो लगभग चालीस बीघा थी.

ट्रेनिंग करने के बाद चाची की तुरंत नौकरी नहीं लगी थी. चाची घर आ गयी थीं. चाचा को जितनी ज़मीन मिली थी उसी में वे अन्न उगाते थे. इतना ही नहीं चाची को भी समय देते थे. परिणाम यह हुआ कि चाची के एक बेटा और फिर एक बेटी हो गये. चाचा का परिवार संपूर्ण परिवार हो गया था ऐसा चाचा कहा करते थे.

मैंने भी मेहनत से पढ़ाई की और कई जगह एग्जाम्स दिये और मेरी नौकरी लखनऊ में लग गयी. मेरी नौकरी की सुनकर मेरे अपनों से ज़्यादा चाचा ख़ुश हुए थे. पूरे गांव में एक ही बात करते फिरे थे, 'रामवीर मेरा दोस्त है... मेरा... हम लोग साथ-साथ पढ़ते थे... हां.' मानो मेरी नौकरी न लगी हो चाचा की लगी हो. तभी तो गांव की ही सावित्रिया दादी ने कहा था, 'नौकरी रमवीरा की लगी है तेरी नांहि. तू तो अपनी मेहरिया को पेटीकोट ब्लाउज़ धो... मेहरिया को गुलाम... निकरो पत्तु है रमवीरा में से... हमसे मति ज़्यादा नौकरी-नौकरी करिए.'

चाचा को बुरा लगा था. शायद इसीलिए आ गये थे मेरे पास, 'रामवीर सवित्रिया ऐसे-ऐसे कह रही थी.'

मैंने सिर्फ़ इतना ही कहा था, 'तुम दुख न करो चाचा... उसे जलन हो रही है इसलिए... देखो इधर मेरी

नौकरी लगी गयी उधर चाची की लग जायेगी... मज़े ही मज़े.' वे फिर ख़ुश हो गये थे.

चाचा के दोनों भाई शायद जान गये थे कि अब चाची की नौकरी लग जाएगी इसलिए जलन भी करने लगे थे. दोनों भाई बात-बेबात के उन्हें अपमानित करने लगते. चाचा अपने भाइयों से अलग-थलग पड़ने लगे थे. चाची अब लड़की नहीं रह गयी थीं. पूरी औरत थीं. और जब किसी औरत को यह पता चल जाये कि उसका पति अपने परिवारवालों में अलग-थलग पड़ गया है या उसके परिवारवाले उसके साथ अन्याय कर रहे हैं या उसके परिवारवाले उसके दुश्मन बने हुए हैं तो बजाय अपने पति की मदद करने और उसका साथ देने के वह भी उसके साथ वैसा ही व्यवहार करने लगती है जैसा उसके परिवारवाले करते हों. चाचा के साथ भी चाची ने वैसे ही किया.

चाचा सीधे-साधे तो थे ही सो चाची ने ज़िद ठान दी कि चाचा अपने हिस्से की जमीन बेचकर शहर में मकान बना लें. दरअसल चाची ने जो दो साल तक टीचर ट्रेनिंग की थी वह जिला मुख्यालय पर की थी. उन्हें शहरी जीवन का चस्का लग गया था. चाचा ने कहा भी था, 'यहां सब लोग हैं. कोई ऊंच-नीच होगी तो सब मदद करेंगे और वैसे भी तुम तो जानती ही हो कि बैया मारे छांव में डारे वैरी मारे धाम में डारे.' चाची ने चाचा की एक भी नहीं सुनी थी. उल्टे चाचा को डांटा ही था. चाचा के पास कोई चारा भी नहीं था. चाचा ने समर्पण कर दिया था.

चाची ने औने-पौने दामों में ज़मीन बिकवा दी और जिला मुख्यालय पर जाकर रहने लगी थीं. अब चाचा का गांव में कुछ भी नहीं रहा था. घर में थोड़ा बहुत हिस्सा था.

चाचा गांव में तो खेती-बाडी कर भी लेते थे शहर में क्या करते. चाची ने एक प्राइवेट स्कूल में एक हज़ार रुपये पर नौकरी कर ली थी. एक हज़ार रुपये उस समय थोड़े से महत्व रखते थे. दो तीन सौ रुपये कमरे का किराया देने के पश्चात घर की गुज़र चल ही जाती थी.

मैं लखनऊ से जब भी घर जाता तो किसी न किसी बहाने चाचा के पास ज़रूर चला जाता था. वे थोड़े से समय में ही सब कुछ बता देते थे, 'रामवीर कुत्ते की इज़्ज़त शायद मुझसे ज़्यादा होगी... तुम्हारी चाची ने तो मेरी ज़िंदगी ही स्वाहा कर दी.... घर परिवार छूट गया... अब कुछ नहीं बचा.' चाचा की आंखों में गीलापन देख मैं भी अंदर तक रुंआसा हो जाता था. मेरी नौकरी अच्छी थी सो चोरी छिपे चाचा की जेब में पांच-सात सौ डाल ही आता था. चाचा मेरे दिये हुए पैसों को ऐसे पकड़ते जैसे उन्हें मैंने अमृत भरा लोटा पकड़ा दिया हो और घंटों चूमते रहते, आशीष देते रहते, 'भगवान करे बहुत बड़े आदमी बनो.' अब हम दोनों के बीच मित्रता के साथ-साथ चाचा-भतीजे वाला संबंध ज़्यादा ऊपर आ गया था. मुझे चाची पर ग़ुस्सा भी आता लेकिन चाची से कुछ भी कहने के लिए चाचा मना कर देते, 'सब छूट गये रामवीर... तुम आ जाते हो तो बचपन याद आ जाता है... तुम उससे कुछ कहोगे तो वह तुम्हें भी हमसे अलग करा देगी.'

'ऐसे कैसे अलग करा देगी चाची.' मैं चाची के साथ किये गये अपने उपकारों की साख भरता तो चाचा कहते, '... नहीं वह अब सब कुछ भूल गयी है रामवीर... वह अब अहसान... फ... रा... मो...' मैं चाचा की बात मान लेता और वापिस घर लौट आता.

एक दिन ख़बर मिली कि चाची की नौकरी लग गयी है प्राइमरी स्कूल में. प्राइमरी स्कूल घर से काफ़ी दूर है. अब चाची ने वहीं, स्कूल के पास ही रहने की ठान दी. और चाचा को साथ लेकर तीनों बच्चों के साथ चाची अपने कार्यस्थल पर चली गयी थी. चाचा के लिए उस जगह कोई काम नहीं था. बच्चे बड़े हो गये थे सो उनकी भी देखभाल करने की कोई ज़रूरत नहीं रह गयी थी. चाचा अब चाची के रहम-ओ-करम पर थे. दोनों बेटियां बड़े-बड़े क्लासेज़ में पढ़ रही थीं. बेटा मां के लाड़ में बिगड़ गया था. पढ़ा ही नहीं या यह कहें पिता की परंपरा को आगे बढ़ा रहा था.

मेरी शादी हो गयी सो मैं अपनी दुनिया में रम गया था. चाचा ने एक बात मुझे कभी नहीं बतायी कि वे तंबाकू खाने लगे थे. पहले तो चोरी छिपे खाते थे फिर खुलेआम खाने लगे. चाचा जहां रहते थे वहां से चाची को रोज़ स्कूल छोड़ने जाते. स्कूल छोड़ने वे अपनी साइकिल से ही जाते थे.

एक दिन न जाने कैसे चला रहे थे या उनसे कहीं चूक हो गयी या नौकरी लग जाने के कारण चाची मोटी हो गयी थीं सो उनका वज़न चाचा संभाल नहीं पाये थे और साइकिल लड़खड़ाकर गिर गयी थी जिससे साइकिल के कैरियर पर पीछे बैठी चाची भी धड़ाम से गिर पड़ी थीं. बस फिर क्या था चाची ने वही सड़क पर ही चाचा को ख़ूब उल्टा-सीधा कहा था. गालियां दी थीं और जो बैग वे लेकर

जाती थीं चाचा पर धमक दिया था. न जाने कैसे बैग की चैन चाचा के लग गयी थी और चाचा के सिर से ख़ून निकल आया था. चाची उस दिन स्कूल नहीं गयी थीं. घर लौटीं तो तीनों बच्चे भी चाचा पर चढ़ बैठे थे. चाचा ने लाख सफ़ाइयां दीं लेकिन कुछ हल नहीं निकला था और सीमा तो तब पार हो गयी जब चाचा के बेटे ने पास में रखे अपने जूते से चाचा को पीटना शुरू किया तो मारता ही रहा था. चाची ने नहीं बचाया था. चाचा भागकर पड़ौस में किसी किराएदार के घर में घुस गये थे. उस समय घर में किराएदार की पत्नी थी. वह सहृदय होने के साथ-साथ सुंदर एवं निर्मल भी थी. उसने चाचा को डिटॉल लगाया और अपना स्नेह भी दिया था.

ठीक इस घटना के दूसरे दिन ही चाची उस औरत से लड़ने निकल पड़ी थीं... 'रंडी, मेरे स्कूल चले जाने के बाद मेरे आदमी पर डोरे डालती है. अब समझी रात में वह मेरे पास आता क्यों नहीं.' उस औरत ने चाची से सिर्फ़ इतना ही कहा था, 'जाओ भैंजी अपना काम करो... तुम क्या जानो पति का अर्थ क्या होता है.' चाची बाद में उससे न जाने क्या-क्या कहती रही थीं और लौटकर, घर आकर चाचा को फिर उल्टी सीधी कही थीं और सब बच्चों के सामने उन्हें, लुच्चा, छिनरा, ऐय्यास' कहती रही थीं. मज़े की बात तो यह थी कि इस बार उनकी बड़ी बेटी भी उनके साथ नहीं थी, 'क्या पापा, छी, घिन आती है आप पर, इतने गंदे काम... मम्मी है न फिर भी क्यों जाते हैं इस औरत के पास?'

चाचा सिर्फ़ हाथ ही हिलाते रहे थे जिसे किसी ने नहीं देखा था.

अपने ही अपनों में चाचा बेगाने हो गये थे. चाची ने बच्चों को चाचा के परिवारवालों अर्थात भाइयों और भतीजों के खिलाफ़ ख़ूब भर दिया था अपने मायकेवालों को 'आदर्श लोग' प्रस्तुत करने में चाची ने ज़मीन-आसमान एक कर दिया. साथ ही सब बच्चों का चाचा के घर वालों से मिलना-जुलना भी बंद करा दिया था. अब बेटियां और उनका बेटा सिर्फ़ अपने ननिहाल ही जाते थे. ननिहाल में बड़ी लड़की कुछ ज़्यादा ही जाती थी. चाचा ने मुझे एक दिन बताया था जब मैं उनसे मिला था तब, रामवीर, बताने में शर्म लगती है लेकिन मैंने तो तुम्हें हमेशा अपना मित्र समझा, कभी गांव का भतीजा नहीं समझा, तुम्हें सच-सच बताते हैं. मेरी बड़ी वाली लड़की अपने मामा के लड़के के साथ...' इसके आगे

लघुकथा

भगवान

✍ डॉ. रामनिवास 'मानव'

भगवान जी भक्तों के व्यवहार से, उनकी सौदेबाज़ी से तंग आ गये थे. उन्होंने एक आंख से देखा कि भक्तों द्वारा पूजा की थाली में चढ़ाये गये एक-एक, पांच-पांच, दस-दस के सारे सिक्के और नोट मिलाकर मुश्किल से सौ-दो सौ रुपये होंगे, लेकिन इस मामूली चढ़ावे के बदले में भक्त उनसे मांग रहे हैं अच्छी नौकरी, सुंदर दुल्हन, प्यारा-सा बेटा, बेटी के लिए श्रेष्ठ घर-वर, स्वस्थ-सुदीर्घ जीवन... और भी न जाने क्या-क्या! उन्हें लगा कि यह तो उनके साथ अन्याय है और घाटे का सौदा भी. अतः उन्होंने मंदिर छोड़ने का निर्णय कर लिया.

तब से मंदिर में भगवान की मूर्ति है, भगवान नहीं.

✆ ७०६, सेक्टर-१३, हिसार-१२५००५ . (हरि.). फोन : ०१६६२-२३८७२०

मैंने उन्हें नहीं बोलने दिया था. हां इतना ज़रूर पूछा था, 'चाचा आपने लड़की को समझाया नहीं.' तो उन्होंने कहा था, 'समझाया था, समझाया क्यों नहीं था.' तो लड़की ने क्या कहा.' मैं तपाक से बोला था.' उसने कहा, इसमें क्या, आजकल सब चलता है. और आप ज़्यादा जासूसी मत किया करो. अपने काम से काम रखो. मैं क्या करता रोटी तो वही मुझे देती थी और रामवीर पेट बहुत ही ख़राब चीज़ होती है.' मैंने पूछा था कि क्या चाची जानती है. तो चाचा ने हां में सिर हिला दिया था. मैंने वापिस लौटने से पहले चाचा से कहा था, 'तुम मेरे साथ चलो. मेरे पास सरकारी मकान है. चार कमरों का घर है. मस्त होकर रहना. मेरा एक ही बेटा है. आपकी देखभाल के लिए नौकर हैं. कोई परेशानी नहीं होगी आपको.'

'अबकी बार आओगे तब चलेंगे.' कहकर उन्होंने मेरे दोनों हाथों का मीठा ले लिया था. एक बार फिर मेरी आंखें भीग गयी थीं.

मैं लखनऊ लौट आया था. ड्यूटी जाने लगा और उसी में समा गया.

मेरे मां-पिता, भाभी-भैया गांव में ही रहते हैं. मां-पिता से सप्ताह में एक दो-बार फ़ोन पर बात तो कर ही लेता हूं.

उस दिन मां फ़ोन पर थीं, 'कैसी हो अम्मा.'

'ठीक हूं लला.'

'कोई परेशानी तो नहीं.'

'नाहि लला.'

'और कोई बात अम्मा.'

'हां, लला एक बात है.'

'क्या.'

'तुम्हारे दोस्त... अरे वही तुम्हारो चाचा... अरे जाके संग तुम पढ़ो करते थे.' मां बताने का प्रयास कर रही थी.

'क्या हुआ उन्हें.'

'लला बाय कैंसर हतो.' इतना बता भी नहीं पायी थी मां कि फ़ोन अचानक कट गया. मैंने दोबारा फ़ोन मिलाया क्योंकि मैं अच्छी तरह जानता हूं कि मां किसी की कहानी किसी के साथ जोड़ देती है. बात किसी की होगी, बता किसी और की देगी.

'हैलो.'

'हां हैलो.' इस बार मेरी भतीजी थी फ़ोन पर.'

'बेटा अम्मा किसे बता रही थी. किसे कैंसर हो गया.' मैंने अपनी भतीजी से पूछा था.

'चाचा अम्मा ठीक बता रही थी. आपके बचपन के मित्र हैं ना... अरे वही जिनकी पत्नी स्कूल में टीचर है वही तो. चाचा उन्हें ना... चाचा उन्हें सुनो तो... चाचा उन्हें कैंसर था.' मेरी भतीजी ने बताया तो मुझे लगा कि कानों में घंटियां बजने लगी हों.

'कैसर था क्या मतलब बेटा.'

'कैंसर था का मतलब चाचा यह कि जब पता चला तो घर वालों ने बजाय उनका इलाज करवाने के उन्हें घर से अलग डाल दिया. कैंसर मुंह में था. वे बोल भी नहीं पाते थे. किसी से बात भी नहीं कर पाते थे. उनके बेटा, बेटियां और उनकी पत्नी ने उनकी कोई देखभाल नहीं की.' भतीजी ने मुझे फिर अटका दिया.

'देखभाल नहीं की से क्या मतलब तुम्हारा, बेटा?' मेरा दिल धड़क-धड़क कर रहा था.

'देखभाल नहीं की से मतलब यह कि सब लोग एक कमरे में साथ-साथ लेटते-बैठते थे. उन्हें कमरे के पीछे अलग एक छोटे से कमरे में डाल दिया गया था जहां यदि ज़रूरी समझा तो कोई गया और नहीं समझा तो नहीं गया.' मेरी भतीजी बताये जा रही थी, 'उस दिन भी यही हुआ था.'

'क्या हुआ था उस दिन.'

'उस दिन वे मर तो रात में ही गये थे लेकिन उन्हें देखने कोई गया ही नहीं... सुबह हो गयी... दोपहर हो गयी... शाम को क़रीब सात बजे के लगभग उनकी बड़ी बेटी कुछ लेने गयी थी. डर कर भाग आयी थी अपनी मां के पास... बाद में मां गयी तो फिर तो उन्होंने ग़जब ही कर दिया. दहाड़े मार-मार कर रो रही थी. सैयां... बलमा... राजा... ठाकुर न जाने क्या-क्या कह रही थीं. चूड़ियां फोड़ डालीं. माथा ज़मीन पर दे मारा... यहां लाये थे उनकी डेडबॉडी. ... एक बार तो वे बेहोश हो गयीं तब उनके गले में पानी डाला गया. वे तब कहीं होश में आयीं. मेरी भतीजी बताये जा रही थी और मेरी आंखों से आंसू बह रहे थे. तभी उसने आगे बताना शुरू किया था, 'चाचा एक बात रह गयी बतानी आपको.'

'क्या.' मैं गला साधकर बोला था.

'एक परचा उनके बेटे ने दिया था पापा को. वे बोल तो पाते नहीं थे सो उस पर अपनी मृत्यु से पहले लिख दिया था.' भतीजी कुछ बताना चाह रही थी.

'क्या लिख दिया था.' मैंने पूछा था.

'रामवीर, आपका नाम लिखा था उन्होंने उस परचे पर.' भतीजी एक बार में ही बोल गयी थी. अब मेरे वश में कुछ नहीं रह गया था. मेरे हाथ से रिसीवर गिर पड़ा था. और मैं पूरी ताकत लगाकर रोया था तो लगा था पूरा घर हरहराकर मुझ पर ढह जायेगा.

मेरी पत्नी ने मेरी आवाज़ सुनी तो भागकर मेरे पास आयी और मुझे संभालने लगी थी कि मैंने उसे धक्का मार दिया था और चीख़ा था, 'तू हत्यारिन है मेरे चाचा की.'

पत्नी सन्न रह गयी थी. 'क्या हुआ आपको... आप ठीक तो हैं... बेटा डॉक्टर को फ़ोन करो पापा को कुछ हो गया है. उनकी तबियत ठीक नहीं लग रही.'

'मैं ठीक हूं वंदना. तुम यहां से जाओ... सुनो डॉक्टर नहीं... अब डॉक्टर कुछ नहीं कर पायेगा... चाचा... चाचा चले गये हमेशा-हमेशा के लिए.' पत्नी सब समझ गयी थी. मैं उससे अपने थोड़ी देर पहले के व्यवहार के लिए क्षमा मांग रहा था और वह, वह तो मेरे माथे को लगातार चूमे ही चली जा रही थी.

२४०, बाबा फरीदपुरी,
वेस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली-११०००८.
मो. : ९८६८८४६३८८

कहानी

अमल का स्टाइल है

सुषमा मुनींद्र

प्रशस्ति हड़बड़ी में दफ़्तर के लिए निकल रही है और व्यवधान की तरह छोटी बहन आश्वस्ति का कॉल... देर हो जाये तो बॉस (चार्टेर्ड एकाउंटेंट जिनके अंडर में प्रशस्ति आर्टिकिलशिप कर रही है) पंक्चुएलिटी, लीनियेन्सी, सिंसियॉरिटी जैसे शब्दों पर ज़ोर डाल कर बताने लगते हैं, उनके दफ़्तर में लापरवाही नहीं चलेगी. लेटलतीफी बिल्कुल नहीं. सी. ए. कर रही प्रशस्ति ने हड़बड़ी में सेल फ़ोन ऑन किया —

'हां, आश्वस्ति...'

'दीदी, मैं अमल के साथ नहीं रहूंगी.'

आश्वस्ति के स्वर की भरपूर लाचारी ने प्रशस्ति की हड़बड़ी को बढ़ा दिया —

'महीने भर से तुम्हारी दुश्वारियां सुन रही हूं. तुम्हारा नाम आश्वस्ति ज़रूर है पर न तुम आश्वस्त रहती हो, न मुझे रहने देती हो.'

'अमल मिसबिहेव करती है.'

'तुम जब से पूना आयी हो, मैं तुम्हारे झगड़े ही सॉल्व कर रही हूं.'

'मैंने कितना तो एडज़स्ट किया.'

प्रशस्ति थोड़ा सा संयत हुई — 'इस लड़की को अचानक क्या हो गया?'

'जंगली हो गयी है. कहती हूं जंगलीपन छोड़ो तो कहती है नहीं छोडूंगी. बुला लो अपनी दीदी को, मैया को, बापू को.'

'ऑफ़िस जा रही हूं. शाम को तुम्हारे पास आऊंगी.'

दुपहिया स्टार्ट कर प्रशस्ति दफ़्तर चली गयी.

प्रशस्ति पूना में रह कर सी. ए. कर रही है. यहीं मेडिकल कॉलेज़ में आश्वस्ति का चयन हो गया. महानगर की दूरियों से अपरिचित मम्मी-पापा प्रसन्न थे — दोनों बहनें एक साथ रहेंगी. प्रशस्ति अन्य दो लड़कियों के साथ अपने दफ़्तर के समीप जहां रहती है वहां से आश्वस्ति का संस्थान तीस किलोमीटर दूर है. रोज़ एक बड़ी दूरी तय करना असुविधाजनक होता है. इसके अतिरिक्त प्रथम वर्ष के विद्यार्थियों को नियमानुसार छात्रावास में रहना पड़ता है. द्वितीय वर्ष से रहने की व्यवस्था स्वयं करनी पड़ती है. छात्रावास में आश्वस्ति और अमल रूम पार्टनर थीं. अमल को टॉपिक समझ में नहीं आते थे. आश्वस्ति चकित हो जाती — 'पढ़ाई समझ में नहीं आती तो मेडिकल क्यों कर रही हो?'

'मैं लफड़े में नहीं पड़ना चाहती थी. पर मेरी माई डॉक्टर, बापू डॉक्टर. डोनेशन देकर मुझे ठूंस दिया यहां कि डॉक्टर की औलाद को डॉक्टर होना चाहिए. सुन आश्वस्ति, तू मेरे मगज में एम. बी. बी. एस. भरेगी, मैं तुझे ज़माने की सैर कराऊंगी. मेरा एकॉउंट हरदम फुल रहता है.'

छात्रावास में प्रतिबंध और फ्रेशर स्टूडेन्ट के अनुशासन में अमल तमीज़ वाला व्यवहार करती थी लेकिन लड़कों जैसा नाम, आसमान की ओर मुंह उठाकर, लड़कों की तरह झूम-झूम कर चलने के कारण परिसर में जहां-तहां सुनाई दे जाता था — ये भाई का स्टाइल है. सुनकर आश्वस्ति अमल को करुणा से देखती. अमल की त्वचा में चुनचुनाहट तक न होती. अलबत्ता आश्वस्ति और अमल की जुगलबंदी अच्छी चल रही थी. आश्वस्ति, अमल को टॉपिक समझाती. बदले में अमल कहती — 'तू अच्छी मिल गयी रे वरना हर पेपर में मुझे बैक मिलता. मेरा एकेडेमिक रिकॉर्ड तेरे हाथ में है.'

अमल मूवी, रेस्टोरेंट, ऑटो, कॉस्मेटिक्स पर खुले हाथ ख़र्च कर आश्वस्ति को वे ठाट उपलब्ध कराती जिनकी छोटे नगर और पिता की तंग आर्थिक सीमा के कारण

आश्वस्ति ने कल्पना नहीं की थी. बदले में आश्वस्ति कहती — 'तू अच्छी मिल गयी रे. मैं तो अब तक मुर्गी की ज़िंदगी जी रही थी.'

...दोनों की अच्छी जुगलबंदी.

...द्वितीय वर्ष में छात्रावास छोड़ना पड़ा.

आश्वस्ति बोली, 'यहीं आस-पास, पढ़ने-रहने लायक छोटा घर ढूंढ़ लेते हैं.'

अमल कमर में हाथ रख भाई वाले स्टाइल में खड़ी हो गयी — 'हम दोनों मुर्गियां नहीं हैं जो दड़बे में रहेंगे. मेरे साथ रहना है तो मुर्गी की तरह रहने की आदत छोड़ आश्वस्ति. मुझे अच्छा घर चाहिए.'

'पढ़ना और सोना ही तो है.'

'रहना भी है रे.'

'डिपॉज़िट कितना होगा, रेंट कितना. मेरे पापा बहुत एफोर्ड नहीं कर सकते, अमल. किसी तरह हम दोनों बहनों को पढ़ा रहे हैं.'

'डिपॉज़िट तो एक बार ही देना पड़ता है न. जितना मैनेज़ कर सके, रेंट दे देना. मैं हूं न. चलो आज ए. टी. एम. का बैलेंस चेक करती हूं. मेरा बैलेंस देख कर सैडेशन में चली जायेगी.'

...छात्रावास का अनुशासन छूटा.

...अमल ने बहुत कुछ छोड़ दिया.

...पूरी तरह बेफ़िक्र लड़की बन गयी.

अभी किसी मेडिकल छात्र के साथ हंस रही है... अब किसी के साथ बहस कर रही है... अब किसी को मुक्का तान रही है... कभी स्किन टाइट कपड़े, कभी ढीले-ढपोल... कभी शोभनीय लंबाई वाले कभी तिकोने से, उठंग... गले में कभी स्टोन की मोटी माला, कभी मोती की कई-कई मालाएं. वस्त्र और व्यवहार से कभी बिजूका लग रही है, कभी विदूषक, कभी सुधरी हुई लड़की... ऐसा गुरूर-सुरूर कि इसके आस-पास अतिरेक नज़र आता है. लेकिन आश्वस्ति के साथ जुगलबंदी अच्छी थी.

तृतीय वर्ष में पदार्पण के साथ वैमनस्य आ गया.

कौन-सा झगड़ालू ग्रह किस घर में आ बैठा कि अमल के चेहरे में मतभेद दिखने लगा. उसे आश्वस्ति की प्रत्येक गतिविधि पर आपत्ति होने लगी. आश्वस्ति पढ़ती, अमल टी. वी. का वॉल्यूम तेज़ कर देती.

'अमल, मैं पढ़ रही हूं.'

: प्रकाशन :

उपन्यास : छोटी सी आशा, गृहस्थी कहानी संग्रह; मेरी बिटिया; नुक्कड़ नाटक, महिमा मंडित, मृत्युगंध, अस्तित्व, अंतिम प्रहर का स्वप्न, ऑन लाइन रोमांस, अपना ख्याल रखना, जसादी एक्सप्रेस, विलोम, तुम्हारी भी जय-जय, हमारी भी जय-जय, तीन कहानी संग्रह प्रकाशनाधीन.

: विशेष :

कहानियों का मराठी, मलयालम, कन्नड़, तेलुगु, पंजाबी, गुजराती, उर्दू, अंग्रेजी, उड़िया आदि भाषाओं में अनुवादन; कहानी संग्रह 'विलोम' व उपन्यास 'छोटी सी आशा' का डॉ. सुशीला दुबे द्वारा मराठी अनुवाद; कहानियां प्रतिनिधि कहानी संग्रहों में संकलित; गणित सरपंचिन, दर्द ही जिसकी दास्तां रही आदि कहानियों का मंचन.

: पुरस्कार :

म. प्र. साहित्य अकादमी का सुभद्रा कुमारी चौहान पुरस्कार; निर्मल साहित्य पुरस्कार (म. प्र.); कमलेश्वर (वर्तमान साहित) कथा पुरस्कार; प्रेमचंद (हंस) कथा सम्मान आदि.

'आश्वस्ति मुझे टी. वी. देखना है.'

'पढ़ो. बिल्कुल नहीं पढ़ती हो.'

'मेरा टी. वी. है. मुझे डायरेक्ट करने की बेवकूफ़ी मत करो.'

आश्वस्ति सोने लगती, अमल लाइट ऑन कर देती.

'अमल मैं सो रही हूं.'

'पढ़ने का मूड बन गया है.'

कॉलेज़ से लौट कर आश्वस्ति सुस्ताना चाहती, अमल सेलफ़ोन पर लड़के-लड़कियों को आमंत्रित करने लगती — 'हंगामा हो जाये.'

आश्वस्ति सतर्क करती — 'अमल अभी संडे को हंगामा इतना अधिक हो गया कि मकान मालकिन नीचे उतर आयी थी. किसी दिन कह देगी मकान छोड़ो.'

'मकान छोड़ दूंगी, तौर तरीक़े नहीं.'

इधर अमल ने एक लंबे बाल वाले लड़के से नज़दीकी बढ़ा ली है. वह अक्सर आता है या यह उसके साथ कहीं चली जाती है.

'कहां थी अमल? इतनी रात को लौट रही हो.'

'आश्वस्ति, मैं तुम्हारी तरह बहिनजी टाइप बन कर नहीं रह सकती. अब दूध का धुला कोई नहीं रहना चाहता. न ही हम लोगों को दूध का धुला मिलेगा. सेकेंड हैंड या थर्ड हैंड मिलेगा तो क्यों न...

और जब... आश्वस्ति अपने माता-पिता या प्रशस्ति से सेल पर बात करती अमल धीमे स्वर में स्वगत-सा कुछ कहते हुए उसके आस-पास मंडराती रहती. आश्वस्ति सेल ऑफ़ करती और यह उपहास उड़ाती — 'मम्मी-पापा से इतना डिसकस क्यों करती हो लिटिल गर्ल?'

'उनसे कन्सल्ट करना मुझे अच्छा लगता है अमल.'

'मुझे नहीं लगता. अपने फ़ैसले ख़ुद करती हूं.'

'तभी दो पेपर में बैक आ गया है.'

'कवर कर लूंगी.'

'यदि पढ़ोगी! मम्मी-पापा ने यहां तुम्हें पढ़ने भेजा है. तुम उनका पैसा बर्बाद कर रही हो.'

'उनका पैसा? लिसिन. मेरे एकॉउंट में क्रेडिट होते ही पैसा मेरा हो जाता है.'

'इसीलिए बर्बाद करती हो?'

'तुम्हारे ऊपर जितना बर्बाद किया है, लौटा दो. अभी. इमीज़ियेटली.'

'अमल तुम्हें कुछ हो गया है.'

'तुम्हें ऐसा लगता है तो शिफ़्ट हो जाओ. मैं फैल कर रहूंगी.'

'सोच लिया है?'

'सोचना तुम्हें है.'

'दीदी से बात करती हूं.'

'करो बात. अपनी दीदी से, मैया से, बापू से.'

...प्रशस्ति दफ़्तर से सीधे आश्वस्ति के घर पहुंची.

...आश्वस्ति असहज सी दिख रही है.

अमल नियमित बेफ़िक्री में. बोली — 'आओ दीदी.'

यह तो बेफ़िक्री में चीख़ कर प्रशस्ति का स्वागत करती थी. आज बेफ़िक्री में जोश और जज़्बा नहीं, बेफ़िक्री ही है.

प्रशस्ति घर में पनप रहे वैमनस्य को तजबीजती रही फिर इस तरह बोली कि अमल से पहले आश्वस्ति आरोपी साबित हो — 'आश्वस्ति तुम तो अमल के साथ अच्छा एडज़स्ट करती हो, अब क्या हो गया?'

आश्वस्ति ने संकेत प्रेषित किया — 'यह बात अमल से कहो.'

अमल ने संकेत ग्रहण किया, 'दीदी, आश्वस्ति को मुझसे प्रॉब्लम होती है.'

अमल, प्रशस्ति को बहुत मान आदर देती है. इतना कि आश्वस्ति जब भी इसकी निंदा करती प्रशस्ति समझा देती — रईस लड़की वाले नख़रे हैं पर दिल से अच्छी है. इस वक़्त कैसी बेग़ैरत-सी हो रही है. अमल की बात पर आश्वस्ति ने आपत्ति की — 'प्रॉब्लम? दीदी, मैं पढ़ नहीं पाती हूं. मेडिकल पास करना कितना कठिन है.'

अमल ने आश्वस्ति के प्रति बेरुख़ी दिखाते हुए प्रशस्ति से कहा, 'दीदी इसे प्रॉब्लम है. ये शिफ़्ट हो जाये.'

निर्णायक बात हो रही है. प्रशस्ति ने भी निर्णायक बात की — 'सोच लिया है अमल?

'सोचना आश्वस्ति को है.'

'अकेले रह लोगी?'

'आराम से.'

'मम्मी-पापा को बताया अकेले रहना चाहती हो?

'मैं अपने फ़ैसले ख़ुद करती हूं.'

यह इसकी ज़िद है या सनक ? प्रशस्ति ने सोचा था उसका इतना आदर करती है. समझाने से समझ जायेगी. या झिझक जायेगी. पर यह कितनी बदली हुई लग रही है. आश्वस्ति जानती थी अमल समझाने से नहीं समझेगी. उसने अपना ज़रूरी सामान सहेज रखा था. तेज़ी से उठकर भीतर के कमरे में गयी और दो बैग उठा लायी — 'चलो दादी.'

प्रशस्ति को लगा आश्वस्ति काम बिगाड़ रही है. अमल पूर्ववत बेफ़िक्र बनी रही. आश्वस्ति ठीक उसके सामने जाकर खड़ी हुई —

'अमल, मैं मकान छोड़ रही हूं. डिपॉजिट का आधा पैसा मुझे दे दो.'

अमल ने उसे देखा जैसे उसने क्षुद्र बात की है — 'डिपॉज़िट मुटल्ली (मकान मालकिन) से मांगो.'

'वह तो तब देगी जब तुम भी मकान छोड़ो.'

'मुझे मरवाने के लिए किसी को सुपारी दे दो. मकान

खाली हो जायेगा. तुम डिपॉज़िट ले लेना. मेरे हिस्से का भी.'

प्रशस्ति को लगा आश्वस्ति बात को असहनीय बना रही है जबकि प्रशस्ति विकल्प खुला रखना चाहती थी.

'आश्वस्ति, अमल को सोचने दो. डिपॉज़िट भागा नहीं जा रहा है.'

'मैं लेकर रहूंगी.'

'थोड़ा चुप रहो न. अमल, आश्वस्ति कुछ दिन मेरे साथ रहेगी. तुम्हें अकेले रहने में दिक्कत नहीं होती है तो आश्वस्ति के लिए कुछ इंतज़ाम करूंगी.'

...आश्वस्ति, प्रशस्ति के फ़्लैट में.

...यहां अलग तरह की अड़चनें.

दूरी बहुत बड़ी अड़चन. संस्थान जाने में समय अधिक लगता. ऑटो महंगा पड़ता. अक्सर क्लास मिस हो जाती. संस्थान के समीप मध्य सत्र में मकान खाली नहीं मिलेंगे. ढूंढ़ने का वक़्त भी नहीं. डिपॉज़िट और किराया आश्वस्ति अकेले वहन नहीं कर सकती. प्रशस्ति के मकान ओनर ने कम से कम दो बार आपत्ति की — तीन लड़कियों के रहने की बात हुई है. चौथी क्यों? साथ की दोनों लड़कियां चिंतित हैं — अच्छी लोकेशन में अच्छा फ़्लैट मिला है. ओनर छोड़ने को कह देगा तो दिक्कत होगी. आश्वस्ति का कुछ इंतज़ाम करो.

प्रशस्ति क्या करे क्या न करे.

'आश्वस्ति इंस्टीट्यूट में अमल से बात नहीं होती?'

'देखते ही मुंह फेर लेती है.'

क्या हो गया है इसे? मेरी रेसपेक्ट करती थी लेकिन उस दिन मेरा भी लिहाज़ नहीं किया.'

'दीदी वह अपने मम्मी-पापा का लिहाज़ नहीं करती, तुम्हारा क्यों करेगी? पैरेन्ट्स से रेग्यूलर बात नहीं करती. उनका कॉल आता है तो मिसबिहेव करती है. पहले भी घर कम जाती थी, अब तो जाना ही नहीं चाहती. मुझसे कहती है सेमिस्टर होते ही तुम बेवकूफ़ की तरह घर क्यों भागती हो? यहीं रहो. आवारागर्दी करेंगे.'

'इसकी फ़ैमिली में कोई परेशानी है? अमल परेशान लग रही थी.'

'वह ड्रैक्यूला लग रही थी. इतना सताया. मैं डिपॉज़िट लेकर रहूंगी.'

'इस तरह ऐंठ कर मांगोगी तो डिपॉज़िट नहीं मिलेगा. सोचने दो.'

प्रशस्ति सोचती रही — हो सकता है अमल परेशान हो... हो सकता है अमल पूरी तरह ग़लत न हो... हो सकता है ग़लती आश्वस्ति की भी हो... अमल ऐसी नहीं थी. मुझे बड़ी बहन का सम्मान देती थी. अमल से बात करनी चाहिए. अकेले रहने की अड़चनों से गुज़र रही होगी. हो सकता है पछता रही हो. पढ़ाई को लेकर बहुत परेशान होगी. आश्वस्ति की मदद के बिना टॉपिक तैयार नहीं कर पाती... अमल से बात करनी चाहिए. अकेले ख़ुश है तो डिपॉज़िट की बात करनी होगी. बड़ी रक़म है. हम लोगों के लिए तो बहुत बड़ी रक़म...

प्रशस्ति, अमल के घर अचानक पहुंची.

मुख्य द्वार खुला था. यह लड़की क्या बिल्कुल नहीं डरती कि दरवाज़ा बंद रखे? घर पर है या खुला छोड़ कर नदारद है? आश्वस्ति बताती है इसका घर पर रहना, न रहना तय नहीं रहता. प्रशस्ति ने बेल बजायी. अमल ज़ोर से बोली — 'कौन है? आ जाओ.'

बिल्कुल नहीं सोचती आने वाला कौन है? किस क़िस्म का है?

'मैं प्रशस्ति.'

अमल तत्क्षण द्वार पर आ गयी. चेहरे में न बेफ़िक्री न बेवकूफ़ी. बल्कि रोने के चिन्ह हैं. तो रईस बाप की इस इकलौती बिगड़ी औलाद को समझ में आ गया है अकेले रहना आसान नहीं.

'आओ, दीदी.'

प्रशस्ति अंदर आ गयी. घर की बेतरतीबी बताती है तरतीब आश्वस्ति देती थी. आश्वस्ति को यह अहंकारी लड़की नबाब बना कर रखती रही होगी.

'कैसी हो अमल?'

गर्दन को छोटा सा ख़म देकर उसने ख़ुद का ठीक होना ज़ाहिर किया.

'घर का क्या हाल बना रखा है?'

'मैं ठीक कब रखती थी? वह तो आश्व... बैठो दीदी.'

अमल ने बेड की चादर ठीक कर प्रशस्ति के लिए बैठने की जगह बनायी.

प्रशस्ति को सूझ नहीं रहा था क्या बात करे, कैसे आरंभ? गज़ब करते हुए अमल ने बात का सूत्र निकाला

— 'आश्वस्ति कैसी है?'

प्रशस्ति को कोई अनुमान नहीं था अमल बात शुरू करेगी और आश्वस्ति के संदर्भ में शुरू करेगी.

'इतनी दूर आने-जाने में उसकी पढ़ाई सफ़र कर रही है. मिड सेशन में इस एरिया में मकान नहीं मिल रहे हैं. तुम तो जानती हो हम लोग बहुत एफ़ोर्ड नहीं कर सकते. आश्वस्ति तुम्हारी तरह स्मार्ट भी नहीं है कि अकेले रह ले.'

प्रशस्ति चतुरता से धनात्मक वातावरण बनाना चाहती है.

'मैं कहती थी बहिन जी टाइप मत बन. मानती नहीं.'

अमल ने भड़क कर नहीं बल्कि नम्रता से कहा.

प्रशस्ति को हौसला मिला— 'मम्मी-पापा कैसे हैं?'

'इधर उनसे बात नहीं हुई.'

परेशान है अमल. सूरत और स्वर दोनों डॉउन हैं.

'कोई परेशानी है? अमल तुम परेशान लग रही हो. आश्वस्ति से तुम्हारे जो भी डिफ़रेन्सेस हों पर मैं जानती हूं, तुम मुझे बड़ी बहन मानती हो. मुझ पर भरोसा करते हुए कुछ बताओ तो मैं मदद कर सकूं.'

'भरोसा तो मैं पैरेन्ट्स पर... दीदी मैं परेशान हूं.'

'परेशानी जान सकती हूं?'

'मेरे मम्मी-पापा डिवोर्सी हैं. मैं सचमुच परेशान हूं.'

अमल की आहत आंखें टपकने लगीं.

'ओह...!'

'सुन कर लोग ठीक आपकी तरह ओह करते हैं. इसीलिए मैं किसी को नहीं बताती. आश्वस्ति को भी नहीं. पता नहीं क्यों आपको बता दिया. यह ओह कहता है मैं दूसरों से अलग हूं.'

अमल, प्रशस्ति की तरफ़ बिल्कुल नहीं देख रही है. मानो नज़र मिलाकर कह नहीं पायेगी. कभी दीवार घड़ी को देखती है कभी बिस्तर की सलवटों को. जबकि प्रशस्ति के सम्मुख कोई रहस्य उद्घाटित हो रहा है. बेफ़िक्र–सी दिखती. इस लड़की के अवसाद और शोक शायद गहरे हैं.

'अमल तुम नॉरमल लड़की हो.'

'मुझे लगता है मैं नॉरमल नहीं हूं.'

'मीन?'

'आश्वस्ति आपसे या आपके मम्मी-पापा से मोबाइल पर बात करती है तब मुझे लगता है मैं उसका सिर फोड़ दूं.'

ग़ज़ल

✍ चांद मुंगेरी

बारहा देखता हूं मुझ में कमी मिलती है,
कोई आवाज़ है जो लब को मिरे सिलती है.

हर तरफ़ झूठ, मक्कारी का घना साया है,
दूर उम्मीद की परछाई महज़ हिलती है.

खेल भी होश में खेलो तो यहां सब मुमकिन,
जोश में जीत की गोटी भी कहां मिलती है.

इक कली शाख पे आयी, है मुकद्दर इसका,
आज के दौर में ये कब ओ कहां खिलती है.

दर्द अक्सर हमें अपनों से मिला करते हैं,
ग़ैर को बैर की फ़ुरसत ही कहां मिलती है.

'चांद' की चाह में हमने तो गंवाया सब कुछ,
भूल है एक जो अंदर से हमें छीलती है.

२सी/१-१४१,
बोकारो स्टील सिटी,
बोकारो-८२७००१ (झारखंड)
मो. ९२०४०९३०४०.

'क्यों?'

'यह इतनी सुखी क्यों है? मैं क्यों नहीं हूं? मैं मिसबिहेव करने लगती हूं. मैं चाहती हूं सब मेरी तरह परेशान रहें.'

इतनी परेशान है कि परपीड़क बनती जा रही है.

'आश्वस्ति का यहां न रहना अच्छा लगता है?'

'एक सुखी लड़की मेरे सामने नहीं है यह बात मुझे दिलासा देती है.'

'तुम ख़ुद को कॉम्प्लीकेटेड बना रही हो अमल. मुझे लगता है अकेले रहते हुए तुम अधिक परेशान हो गयी हो. तहस-नहस घर. तुम्हारा उतरा चेहरा. तुम हरदम मुझे बेफ़िक्र बल्कि चियरफुल लगती रही हो.'

'क्योंकि मुझे दया या सहानुभूति से नफ़रत है. क्योंकि मैं ख़ुद को ख़ुश लड़की की तरह प्रेज़ेंट करना चाहती हूं. लेकिन अब मुझे फ़ैसला करना है.'

'मीन?'

'एडल्ट होने तक मैं मम्मी की कस्टडी में रहती थी.

कभी-कभी पापा से मिलने चली जाती थी. यहां से जाती हूं तो मम्मी के घर में रहती हूं लेकिन दो-चार दिन पापा के घर में भी रहती हूं. मैं एडल्ट हूं. जहां रहना चाहूं रह सकती हूं पर मम्मी पसंद नहीं करतीं मैं पापा के घर में थोड़ा भी वक़्त बिताऊं. अब उन्होंने साफ़ कह दिया है मुझे फ़ैसला कर लेना चाहिए मैं किसके साथ रहना चाहती हूं. यदि पापा के घर दो चार दिन को भी रहने जाऊंगी तो वे मेरे बिना अकेले रहना पसंद करेंगी.'

'ओह...'

'ओह मत करो न. दीदी ये डिवोर्सी बच्चों से क्यों नहीं पूछते वे क्या चाहते हैं? मैं मम्मी के घर रहना चाहती हूं और पापा के घर में भी. अब फ़ैसला करना है. मैं बुरे दौर से गुज़र रही हूं...

प्रशस्ति भयभीत बल्कि आक्रांत थी. नहीं जानती थी यह उपद्रवी लड़की रोती भी है. रोना अस्वाभाविक या पाखंड की तरह नहीं लग रहा है... हिलक कर अनाथभाव में रो रही है. कैसे इसे शांत करे, कैसे सांत्वना दे. प्रशस्ति ने कुछ देर उसे रोने दिया — 'अमल, तुम परेशान हो.'

अमल ने ख़ुद को संभाला लेकिन स्वर शुष्क है — 'मेरा मानना है शादी एक गैंबल है जिसमें पति और पत्नी ही नहीं बच्चे भी छले जाते हैं. दीदी मुझे शादी से नफ़रत हो गयी है.'

'शादी से पहले उन दोनों ने एक-दूसरे को पसंद नहीं किया था क्या?'

'लव मैरेज़ है... अब इतनी नफ़रत. मम्मी, पापा से इतनी नफ़रत करने लगी हैं कि मैं पापा के घर दो-चार दिन भी रहीं वे निराश होने लगती हैं.'

'मुझे पूछना नहीं चाहिए पर ग़लती किसकी रही?'

'दोनों की. पापा की अधिक रही.' अमल देख रही है कभी दीवार घड़ी को कभी बिस्तर की सलवटों को — 'मम्मी अपनी जगह सही होती थीं. वे पापा से अधिक एफ़ीशियेंट और डायनामिक हैं यह बात पापा को डाइज़ेस्ट नहीं होती थी. वे मम्मी, को अयोग्य साबित करने के मौक़े ढूंढ़ते थे. अपमानित करते थे. मैं सोचती थी मम्मी क्यों सहती हैं? उनमें टैलेंट है, स्किल है, एनर्ज़ी है तो उनकी क्या ग़लती? मैं पूरे दिल से मम्मी के साथ थी. मुझे उनके साथ रहना अच्छा लगता था. तब मैं चीज़ों को नहीं समझती थी. समझने लगी तब पता चला मैं बहुत बुरे दौर से गुज़र रही हूं. दीदी आप मुझे स्वार्थी कहो पर मैं सोचने लगी मम्मी सहती रहतीं तो शायद तलाक... न होता. मैंने प्रेशर में दिन बिताये हैं. मैं इस तरह सोच सकती हूं. मम्मी-पापा की जो भी लड़ाई थी पर हम तीनों एक घर में रहते थे. फिर वह घर पापा का घर हो गया. मम्मी मुझे लेकर छोटे घर में आ गयीं. भरा-पूरा किचन पापा के घर में छूट गया. मम्मी के किचन में थोड़े से बर्तन और जार. अब मुझे लगता है घर की तरह मैं भी दो हिस्सों में बंट गयी हूं. मम्मी के पास रहती हूं तब लगता है पापा के पास रहूं. पापा के पास रहूं तो लगता है मम्मी निराश होंगी. गिल्ट होती है, दीदी. घर जाने की इच्छा नहीं होती. लेकिन फ़ैसला करना है.'

प्रशस्ति को अमल असहाय बल्कि मासूम लगी. मौज-मस्ती, प्रदर्शन, आडंबर में अपनी असामान्य स्थिति को भूलना और छिपाना चाहती है. हरदम उग्र होती है कि ढीली पड़ेगी तो कोई याद दिला देगा — ओह... तुम डिवोर्सी माता-पिता की संतान हो. आश्वस्ति इसे रईस की इकलौती औलाद कहती है लेकिन इसका अभाव देखो. इसके पास एक मुकम्मल घर तक नहीं है.

इसका घर दो भागों में बंट कर पापा का घर और मम्मी का घर हो गया है. यह कभी पापा के घर में रहती है, कभी मम्मी के घर में.

'तुम किसके साथ रहना चाहती हो अमल?'

'दोनों के साथ. मैं दोनों को प्यार करती हूं. वे भी मुझे बहुत प्यार करते हैं. मुझे अपने पक्ष में करने के लिए ज़रूरत से अधिक पैसे देते हैं. मैं ख़ुश होती थी कितनी ख़ास हूं. अब समझ में आता है बुरे दौर से गुज़र रही हूं.'

...यह है इसका व्यक्तिगत.

असहिष्णु होते हुए विद्रोही हो जाने की वजह.

सचमुच बुरे दौर से गुज़र रही है. बुद्धिजीवी वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले इसके माता-पिता ने आपसी शत्रुता में जानना नहीं चाहा इसके विकासक्रम में क्या बाधा आ रही है. इतनी कॉम्प्लीकेटेड होती जा रही है कि एक सुखी लड़की को आस-पास देख कर अमानवीय बल्कि क्रूर होने लगती है. बेफ़िक्र दिखने वाली यह लड़की इस समय कैसी दीन लग रही है.

'अमल, अलग होकर मम्मी-पापा ख़ुश हैं?'

अमल ने अपने भीतर पनप गयी नमी को पूरी तरह समेट लिया है. हर प्रश्न का उत्तर देने के लिए तैयार है

— 'ख़ुश? दोनों के चेहरे की चमक ग़ायब है. मैंने उन्हें खुल कर हंसते नहीं देखा है. पता नहीं किस ख़ुशी के लिए तलाक लिया. और अब भी ख़ुश नहीं हैं. आश्वस्ति अक़्सर कहती थी अमल तुम भाग्यशाली हो. जो चाहती हो तुरंत हाज़िर. जबकि मेरे पापा-मम्मी हम दोनों बहनों को कठिनाई से पढ़ा रहे हैं. मैं कहना चाहती थी तुम्हारे पास पैसा नहीं पर घर है जो तुम चारों का है. कहती नहीं थी क्योंकि मुझे ओह... सुनना अच्छा नहीं लगता.'

दूसरों को परेशान करने वाली लड़की इतनी परेशान!

'कुछ सोचा है?'

अमल दीवार घड़ी देख रही है. जैसे समाधान वहीं से निकलना है.

'सोचते हुए डर लगता है दीदी. जो भी फ़ैसला करूंगी, ग़लत होगा. मुझे दो ग़लत फ़ैसलों में से एक को चुनना है.'

दूसरों को डराने वाली लड़की डरी हुई है.

'दोनों में जो अधिक सही लगे उसके साथ रहो.'

'दोनों में किसी एक की जो हार होगी उसकी कल्पना डराती है.'

तो बौखलाई सी यह लड़की अपने घर, अपने माता-पिता, पारिवारिक मूल्यों की समझ रखती है. भीतर के भावों को समेट कर चिरपरिचित बेफ़िक्री को अपना लेने में भी दक्ष है. झटके से भाई के स्टाइल में खड़ी हो गयी — 'छोड़ो दीदी लफड़ा. आपको ज्यूस पिलाती हूं. आज ही लाकर फ्रीज़ में रखा है.'

डिपॉज़िट की बात करना क्रूरता होगी.

प्रशस्ति रस पीकर चलने को उद्धत हो गयी —

'चलती हूं अमल. जो भी फ़ैसला लो, मुझे बताना. जब भी मुझसे बात करना चाहो, कर लेना. मैं तुम्हारी दीदी हूं.'

...अमल अपने फ़ैसले ख़ुद लेती है.

...फ़ैसला लेना है.

...फ़ैसला जो वस्तुत: फ़ैसला, जैसा नहीं होगा.

प्रशस्ति से बात कर उसके भीतर हल्कापन है. इस हल्केपन का बोध आज से पहले नहीं हुआ था. स्वयं को एक वैचारिक स्तर पर पा रही है. भीतर का उबाल मंद पड़ते हुए वाष्प छोड़कर ठंडा हो रहा है. उसने खुली आंख रात बितायी. सुबह-सुबह प्रशस्ति को कॉल किया. प्रशस्ति चाय पी रही थी — 'हां, अमल.'

अमल की भंगुर-सी लेकिन निश्चित आवाज़ — 'दीदी, मैं, दोनों के साथ नहीं रहना चाहती.'

'मीन?'

'मैं यहीं रहूंगी. जो मुझसे मिलना चाहे, यहां आकर मिले.'

'हो गया फ़ैसला?'

'फ़ैसला ही कह लो. मेरे सिबलिंग नहीं हैं वरना मैं भाई या बहन जो भी होता उसके साथ रहने का फ़ैसला करती. या कि हम दोनों एक-एक में बंट जाते. न मम्मी हारतीं न पापा.'

'अमल तुम इतनी अच्छी बातें करती हो, मैं नहीं जानती थी.'

'आपने मुझे सिरफिरी समझा होगा. आश्वस्ति मुझे यही कहती है न. सिरफिरी, सिनिक, जंगली. जैसी भी हूं, आपको अपनी दीदी मानती हूं. आप मुझे सिनिक कह लो पर मैं रात भर सोचती रही आप मेरी बहन होतीं तो मामला सलट जाता. मैं आपके साथ रहती.'

'मुझे तुम्हारी फ़िक्र होती है अमल.'

'जानती हूं. इसीलिए आप आये. आप नहीं जानते मैं कितना परेशान थी. कितना सोचती थी और नेगेटिव सोचती थी. आश्वस्ति को भेजो दीदी वरना मैं सचमुच सिरफिरी हो जाऊंगी.'

...यह अच्छी सुबह है.

'आश्वस्ति से बात कराती हूं.'

'पता नहीं कैसा रियेक्ट करेगी. इन्स्टीट्यूट में मेरी उससे बात नहीं होती न. आप बोल दो दीदी.'

'तुमने तो हमारी समस्या सुलझा दी अमल.'

'दीदी, मुझे उलझना आता है. फिर उलझ जाऊं तो आप सुलझा दोगे.'

...हंस रही है अमल.

हंसने में न अहंकार है, न अभिमान, न किसी क़िस्म का अतिरेक. स्वाभाविक भाव की स्वाभाविक-सी हंसी है. प्रशस्ति पहली बार जान रही थी कॉम्प्लीकेटेड दिखने वाली यह लड़की हंसती भी है.

द्वारा श्री. एम. के. मिश्र,
लक्ष्मी मार्केट, रीवा रोड,
सतना (म. प्र.) - ४८५००१
मो. : ७८९८२४५५४९

आमने-सामने

'साधौ, शब्द साधना कीजै!'

✍ सुषमा मुनींद्र

बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है, लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने-सामने'. अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नी सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रजाक, मदन मोहन 'उपेंद्र', भोला पंडित 'प्रणयी', महावीर रवांल्टा, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद 'नूर', डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम', सुरेंद्र रघुवंशी, राजेंद्र वर्मा, डॉ. सेराज खान 'बातिश', डॉ. शिव ओम 'अंबर', कृष्ण सुकुमार, सुभाष नीरव, हस्तीमल 'हस्ती', कपिल कुमार, नरेंद्र कौर छाबड़ा, आचार्य ओम प्रकाश मिश्र 'कंचन', कुंवर प्रेमिल, डॉ. दिनेश पाठक 'शशि', डॉ. स्वाति तिवारी, डॉ. किशोर काबरा, मुकेश शर्मा, डॉ. निरुपमा राय, सैली बलजीत, पलाश विश्वास, डॉ. रमाकांत शर्मा, हितेश व्यास, डॉ. वासुदेव, दिलीप भाटिया, माला वर्मा, डॉ. सुरेंद्र गुप्त, सविता बजाज, डॉ. विवेक द्विवेदी, जयप्रकाश त्रिपाठी, डॉ. अशोक गुजराती, नीतू सुदीप्ति 'नित्या' और राजम पिल्लै से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है सुषमा मुनींद्र की आत्मरचना.

मेरे पास सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक प्रभामंडल नहीं है, न ही मेरी पारिवारिक पृष्ठभूमि साहित्यिक-सांस्कृतिक है. मेरा जीवन बहुत साधारण है. कोई घटना विशेष नहीं है, जिसने लिखने के लिए प्रवृत्त किया हो. कहना कठिन है मुझे साहित्य रचना की प्रेरणा कब, कैसे, कहां से मिली. मुझे लगता है प्रत्येक व्यक्ति की एक नियति होती है जो निर्धारित करती है समाज में व्यक्ति किस रूप में स्थापित होगा. मेरे ज़िला व सत्र न्यायाधीश पिता स्व. श्री देवीप्रसाद पांडेय जो सेवानिवृत्त के बाद लोकायुक्त बनाये गये थे, न्यायालय की तरह घर में भी बेहद सतर्क, सजग, कठोर, न्यायाधीश होते थे. कहानी 'प्रशंसक' में मैं उस अनुशासन का वर्णन कर चुकी हूं. हम भाई-बहनों को स्कूल-कॉलेज़ के अलावा अन्यत्र कहीं जाने की आज़ादी नहीं थी. यहां तक कि अपने दौर का बेहद लोकप्रिय रेडियो प्रोग्राम 'बिनाका गीत माला' सुनने के लिए हम स्वतंत्र नहीं थे. रेडियो का मतलब था समाचार. फ़िल्म एक माह में एक, वह भी गहन पूछताछ के बाद कि साफ़-सुथरी है कि नहीं. इस नियंत्रण का परिणाम यह हुआ कि मुझे 'प्रेम' शब्द अनैतिक लगने लगा था. मैंने अब तक ३३० कहानियां लिखी हैं लेकिन एक अच्छी उल्लेखनीय प्रेम कहानी नहीं लिख सकी. हम भाई-बहन खेलने के नाम पर भी बाहर न जा सकें इसलिए ट्यूटर ठीक उस वक़्त के लिए लगाया गया जब सिविल लाइन्स के बच्चे बाहर खेल रहे होते. हम लोगों ने ज़िद की ट्यूशन रखनी ही है तो विज्ञान के विषयों के लिए रखें पर हम सब भाई-बहनों को एक साथ बैठा कर अंग्रेज़ी, हिंदी, संस्कृत पढ़वाई जाती थी कि भाषा का ज्ञान ज़रूरी है. यह ज़रूर रहा कि घर में पराग, नंदन, धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान आदि मंगाये जाते थे. पठन-पाठन में मेरी रुचि रही है. कोर्स की क़िताबें, उपलब्ध पत्र-पत्रिकाएं दत्त-चित्त होकर पढ़ती थी. बहुत संभव है पढ़ने-लिखने का संस्कार मुझे उन्हीं दिनों मिला होगा. उन्हीं दिनों निहायत गुप्त तरीक़े से मेरे भीतर रचनाकार तैयार होने लगा होगा. जीवन के उन्नीसवें वर्ष में

एम. एस-सी. पूर्वार्ध (रसायन शास्त्र) की परीक्षा दी और मेरा विवाह हो गया. फ़ाइनल करने की मंशा ज़ाहिर करने पर ससुर का फरमान — फ़ाइनल करो लेकिन नौकरी नहीं करोगी. मैं बहुत बड़े सपने आज भी नहीं देखती, तब भी नहीं देखती थी. पिता की नैतिकता और धुर ईमानदारी ने संतोष करना भली-भांति सिखा दिया था. जो मिल जाता है स्वीकार है, जो नहीं मिलता उसका ग़म नहीं करती लेकिन लगा था इकलौती बहू होने के फ़ायदे कम, नुकसान बहुत है. इकलौती बहू से जो अपेक्षाएं की जाती हैं उन्हें अलौकिक स्त्री पूरा नहीं कर सकती. मैं तो साधारण इंसान हूं. ख़ैर... ठीक दो वर्षों में मैं बेटे हर्षद व बेटी कामायनी की मां बन गयी.

दो छोटे बच्चों ने जीवन में इतनी अफ़रा-तफ़री भर दी कि फ़ाइनल नहीं हो सका. मैं सतना आयी तब मेरे पति मुनींद्र मिश्र को टैक्सेशन की वक़ालत करते हुए मात्र तीन माह हुए थे. वे संघर्ष के दिन थे जो बरसों चले. संघर्ष करते, काम ढूंढ़ते हुए मिश्रजी पूरा दिन घर से बाहर रहते थे. व्यस्तता के बावजूद मैंने पत्र-पत्रिकाएं पढ़ने की आदत नहीं छोड़ी. आज याद नहीं वह कौन-सा दिन था, कौन-सी तिथि, कैसा जज़्बा, कैसी स्फूर्ति जब मैंने काग़ज़-क़लम उठाने का साहस किया और माह दो माह के श्रम से कहानी 'घर' लिखी जो १९८१ में एक पारिवारिक पत्रिका में छपी. रचनाकार अक्सर कविता से आरंभ करते हैं, मैंने गद्य चुना. आरंभिक लेखन किसी उद्देश्य को लेकर नहीं, खाली समय को भरने के निहितार्थ हुआ. रचना कैसी है, समझ नहीं थी. विज्ञान की विद्यार्थी होने के कारण साहित्य की बारीकियों का ज्ञान नहीं था. बस, छपने का आकर्षण जबर्दस्त था. मेरे लिखे हुए को कोई पढ़ता होगा जैसी कल्पना रोमांचित करती थी. बाद में समझ में आता गया कि लेखन का उद्देश्य क्या होना चाहिए.

वस्तुत: हम अनुभव और आयु में जैसे-जैसे वयस्क होते जाते हैं, व्यक्ति से समष्टि की ओर अग्रसर होते हैं. आयु बढ़ने के साथ मुझे मालूम होता गया कि गंभीर लेखन क्या होता है. लेखन कठिन और अंतहीन प्रक्रिया है जो संभवत: नींद में भी ज़ारी रहती है. जो लिख लिया उसके आनंद और संतोष, जो नहीं लिख पायी उसकी बेचैनी और छटपटाहट के साथ एक निजी संसार बन गया है, जिसमें बेशुमार पात्र रहते हैं. शुरुआती दौर कठिन था. साल में एक या दो कहानियां पारिवारिक पत्रिकाओं में छपतीं, शेष ख़ेद सहित वापस. अस्वीकृत रचना आज भी निराश करती है, तब तो जनम अकारथ लगता था. कोई मेंटोर नहीं जो त्रुटि बताये. पारिवारिक परिवेश और एकांतप्रिय स्वभाव ऐसा रहा कि जब १९९५ के आस-पास मेरी कहानियां साहित्यिक पत्रिकाओं में पते सहित छपने लगीं तब स्थानीय लोगों ने जाना कि मैं सतना में रहती हूं. लिखने के साथ मैं अच्छा साहित्य पढ़ती रही. जानकार होती रही. अपनी कहानियों की त्रुटियां ढूंढ़ने और दूर करने की तमीज़ आती गयी. लेखन में कुछ परिष्कार दिखने लगा. मेरा मानना है कि दो किस्म के लोग होते हैं — प्रतिभाशाली और परिश्रमी. मैं प्रतिभाशाली नहीं लेकिन परिश्रमी हूं. ३३० कहानियां लिख लेने के बावजूद आज तक मेरी कोई कहानी एक सिटिंग या एक ड्राफ़्ट में पूरी नहीं हुई. तीन-चार ड्राफ़्ट में कहानी फ़ाइनल होती है. अनुभव और अनुभूति कहानी लिखने का प्रमुख आधार होता है. मेरे अंतर्जगत में जाने-अनजाने आस-पास की घटना-दुर्घटना, दु:ख-सुख, उत्थान-पतन, समस्या-समाधान, तर्क-वितर्क, अंतर्द्वंद्व-अंतर्विरोध दाख़िल होते हैं और कहानी का प्रारूप बनता है. मैं अपनी सरॉउंडिंग्स को सर्जक की नज़र से देखती हूं. चीज़ें कैसी हैं इससे अधिक ज़रूरी है हम चीज़ों को कैसे देखते हैं. मेरा मानना है समाज के प्रति आम आदमी की अपेक्षा रचनाकार की ज़िम्मेदारी अधिक होती है. मेरी स्मृति अच्छी है फिर भी होता है जेहन में जो भाषा अभी बन रही है, लिखने बैठूंगी तब नहीं बनेगी या दूसरी तरह से बनेगी. खाना बना रही हूं, दिमाग़ में कहानी या विचार चल रहा है. जब लिखने के लिए प्रवृत्त हूं, कुछ दूसरा चल रहा है. बहुत कन्फ्यूज़ होती हूं.

आज जब पीछे मुड़ कर देखती हूं तो पाती हूं राह आसान नहीं थी. पुरुष और स्त्री में एक बड़ा फ़र्क यह है कि पुरुषों को ख़ुद को साबित करने के लिए घर-परिवार में अनुकूल वातावरण दिया जाता है. जबकि स्त्री के काम को मान और मान्यता तब मिलती है जब वह ख़ुद को साबित कर दिखाती है. दो बच्चों की देख-रेख और पारिवारिक झबार के बीच चुराये गये समय में काग़ज़-क़लम थामने का अर्थ परिजनों को कुपित करना था कि कहीं कुछ छप नहीं रहा है तो मैं काग़ज़ काले कर समय का अपव्यय क्यों कर रही हूं? आज भी समाज में अधिसंख्यक लोग लेखन को काम नहीं मानते हैं. बल्कि ग़ैरज़रूरी मानते हैं. बाद में जब कहानियां छपने लगीं तो परिजनों ने माना मैं काग़ज़ काले

नहीं कर रही थी. वह जो था अभ्यास था और 'करत-करत अभ्यास के...' मैं एक मुकाम पर पहुंच रही थी. तब से निरंतर लिख रही हूं. परिवार, समाज, मनुष्यता पर मेरी गहरी आस्था है. इधर जो पारिवारिक विघटन की स्थितियां बन रही हैं, नैतिक-सामाजिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है, लोगों में अकेलापन और मानसिक अस्थिरता बन रही है वह मुझे अधीर करती है. मेरी कोशिश रहती है, ऐसा कुछ लिखूं जिससे मनुष्य का मनुष्य पर भरोसा बढ़े, पारिवारिक-सामाजिक संरचना मज़बूत हो. नैतिक मूल्यों की वापसी हो, पाठकों को वैज्ञानिक सोच और सकारात्मक भाव मिलें. मैं नहीं जानती मेरी कहानियों को पढ़कर किसी पढ़ने वाले पर क्या प्रभाव पड़ता है लेकिन मेरा मानना है कि शब्द ताकतवर और चमत्कारी होते हैं. राह भूले को राह दिखाने की क्षमता रखते हैं. मेरे लिए शब्द ही साधना हैं.

द्वारा श्री एम. के. मिश्र
लक्ष्मी मार्केट, रीवा रोड,
सतना (म. प्र.)-४८५००१.
मो. : ७८९८२४५५४९

ग़ज़ल

✍ तबस्सुम 'कशिश'

मैं ख़ुद में जिस घड़ी हमदम ग़म-ए-तन्हाई पाती हूं,
उम्मीद-ओ-आस की हर पल नयी शम्मा जलाती हूं.

अता तुमने किये जो भी ख़ुलूस-ओ-प्यार के नाम़ें,
उसे जब-जब भी सुनती हूं मैं ख़ुद ही मुस्कुराती हूं.

कभी ख़ुद की ख़बर भी रह नही पाती है जान-ए-मन,
तुम्हें पाने की हसरत में मैं ऐसे डूब जाती हूं.

कभी बातें पुरानी सी कभी सपने सुहाने से,
जतन से रोज़ गुलदस्ता मुहब्बत का सजाती हूं.

तुम्हारी ज़ात में इतनी कशिश है ढूंढने तुमको,
मैं दश्त-ओ-सहरा से आगे समंदर पार जाती हूं.

गली नं. २, संजय नगर,
कोटा जंक्शन (राज.)
मो. ९६९४७४२१३१.

लघुकथा

पांच पेड़ों की परंपरा

✍ आनंद बिल्थरे

सौतेली मां ने, जवान होने के पूर्व ही गाय की तरह उसे एक अधेड़ विधुर के पल्ले बांध दिया. मां के मन में, जाने कहां से करुणा उपजी, बिदा के वक़्त उसने, दहेज के रूप में पांच, फलदार पौधे उसके साथ कर दिये.

पति शराबी था. सब कुछ शराब में घोलकर पी जाता था. भाग्य समझकर, वह टूटे तिनकों से अपनी गृहस्थी संवारने में लग गयी.

मुनिया के पेट में आते ही, उसकी दबी-ढंकी ख़ुशियों के पंख लग गये. धीरे-धीरे मुनिया पांच बरस की हो गयी. पौधे और मुनिया होड़ लगाकर बढ़ने लगे.

अचानक, एक वज्रपात हुआ. नहर में डूबने से पति की मौत हो गयी. वह, भरी जवानी में बेसहारा हो गयी किंतु उसने हिम्मत नहीं हारी.

पेड़ों में फल आने लगे थे. उन्हें बेचकर वह मुनिया के रूप में, अपने सपने साकार करने लगी. उसका स्कूल में दाख़िला करवाया. ड्रेस बनवायी. क़िताबें ख़रीदी. धीरे-धीरे, मुनिया ने दसवीं की परीक्षा पास कर ली. स्कूल के एक बुज़ुर्ग, नृत्य शिक्षक से वह नृत्य सीखा करती.

ज़िला स्तरीय नृत्य प्रतियोगिता में उसे प्रथम स्थान प्राप्त हुआ. स्कूल के ही अन्य नृत्य शिक्षक ने प्रभावित होकर मुनिया का हाथ मांग लिया. मुनिया की मां तो जैसे गंगा नहा गयी.

बिदा करते-करते उसने भी, पांच पौधे मुनिया के साथ रख दिये और कहा कि भविष्य में वह भी अपनी बच्चियों के साथ यह परंपरा ज़ारी रखे.

प्रेमनगर, बालाघाट-४८१००१ म. प्र. मो.: ८३५८९२१००५.

सागर/सीपी

'नाख़ून कटाकर ही शहादत नहीं होती. इसलिए लोगों को पत्रकारों के साथ खड़ा होना होगा....'

✍ चंडीदत्त शुक्ल

(पत्रकार चंडीदत्त शुक्ल से मधु अरोड़ा की बातचीत.)

◈ आप शुरुआती दिनों के विषय में बतायें... मसलन, बचपन, आरंभिक शिक्षा आदि.

मेरा जन्म गोंडा में १५ अगस्त, १९७५ को हुआ. उसी दिन शोले फ़िल्म रिलीज़ हुई थी. मेरे पिताजी का नाम जानकीशरण शुक्ल है. वे गांव के पहले व्यक्ति थे जिन्होंने एम. ए. किया था. मैं ऐसे परिवार से ताल्लुक रखता हूं जो मूलत: पौरोहित्य के पेशे में था. पिताजी ने परंपरा को तोड़ा. उन्होंने औपचारिक शिक्षा की ओर ध्यान दिया. मेरे बाबा ने उनसे कम उम्र में ही विवाह करने के लिए कह दिया था. पिताजी ने विवाह तो किया पर बाबा के अकथनीय कथन को भी समझा कि वे कामकाज करें, पर पिताजी ने ध्यान नहीं दिया और विभिन्न कार्य करते हुए पढ़ाई की और कई नौकरियां कीं. बहुत संघर्ष किया जो अब तक ज़ारी है. उनमें से प्रमुख कार्य किया, ट्यूशन पढ़ाने का. मेरे पिताजी ने दो शादियां की थीं. मैं उस समय ढ़ाई वर्ष का था और मां की कैंसर से मृत्यु हो गयी थी. मैं सबसे छोटी संतान था. पिताजी लाल बहादुरशास्त्री स्नात्तकोत्तर महाविद्यालयय में पुस्तकालयाध्यक्ष थे. मुझे बहनों ने पाला था और फिर उनकी भी शादी हो गयी थी. जब मैं चार वर्ष का हुआ तो पिताजी मुझे अपने साथ ही रखते थे. मेरा पूरा व्यवहार वहीं से तय हुआ. जब कोई छोटा बच्चा कहीं जाता है तो सब प्यार करते हैं, पर यह हमेशा नहीं होता. शुरुआत में उस लायब्रेरी में ३५००० पुस्तकें थीं. पिताजी के दो एक सहयोगी व दो एक कनिष्ठ सहयोगी और मैं... वहां उन सभी ने मुझे कुछ दिनों तक हाथों-हाथ लिया. पिताजी ने ध्यान रखा. मेरा बचपन लायब्रेरी में शुरू हुआ. उस बच्चे ने (मैंने) अक्षर ज्ञान व पुस्तकें पढ़ना एक साथ शुरू किया. मुझसे बात करनेवाला कोई नहीं था.

याद आता है कि मैं एक दिन बोर हो रहा था (उस समय मैं क़रीब पांच वर्ष का था). किसी स्कूल में औपचारिक दाख़िला कराया गया, पर मैं नहीं गया. पापा से कहा, 'घुमाने ले चलो.' पापा ने कहा, 'रुको, अभी चलते हैं.' मैं लायब्रेरी से जूझने लगा था. एक अल्मारी खोली. क़िताबें संभालकर नहीं रखी थीं, और मुझ पर गिरीं और मैं उन क़िताबों के नीचे दब गया और रोते-रोते सो गया. यह एक लंबा प्रॉसेस है. धीरे-धीरे पुस्तकें आकर्षित करने लगीं. पहले तो क़िताबों से खेलता था और फिर उन्हें पढ़ने लगा और अपने इमोशन्स क़िताबों से ही शेअर करता था. ये आश्चर्यजनक है, पर मुझे भी भरोसा नहीं होता. मनोविज्ञान की क़िताब, हिंदी साहित्य का इतिहास या समाजशास्त्र की क़िताब पढ़ रहा हूं तो उससे क्या होगा? (तब मैं छ:–सात साल का था). न क़िताबों को पता था और न हाथों को पता था कि वे किनके हाथों में हैं. नवीं कक्षा तक पिताजी के साथ जाता था और पढ़ने का शऊर आ गया था. शऊर एक मज़ेदार चीज़ है. ज़्यादातर शऊर समाज तय करता है. मेरे अनुसार शऊर वह है जो मज़ा दे, आनंद दे. मैंने क़िताबों के साथ भेदभाव नहीं किया. एक सिरे से पढ़ना शुरू किया. घर में स्त्रियां नाममात्र की थीं. पिता का दिल मां का था, पर शरीर पुरुष का था. मैं पहले से अब तक बड़ा होने की और मेच्योर होने की कोशिश करता रहा. यह पढ़ना मेरी भाषा की बुनियाद थी, जिससे दुनिया को देखने के लिए नज़र मिलती है. दुनिया इतनी हसीन और ख़ूबसूरत नहीं है. मेरी औपचारिक शिक्षा चल रही थी, जिसमें स्कूल नहीं था. मुझे पता भी नहीं था कि मैं क्या पढ़ रहा हूं. क़रीब २५ साल तक पढ़ता रहा और आज भी पढ़ता हूं. पढ़ना नशा है.

इसी दौरान इलाहाबाद से प्रकाशित होनेवाली पत्रिका 'नीरज फ़िल्मी स्क्रीन' के तनवीर ज़ैदी से मुलाक़ात हुई. वे फ़िल्मी पत्रकारिता से जुड़े थे. इन गतिविधियों से एक तरह

दस साल की उम्र से लेखन शुरू और तीस सालों से ज़्यादा वर्ष से रचना कर्म से जुड़ाव, सन् १९८५-८६ से बहुत से अख़बारों में स्वतंत्र रूप से लेखन कर्म, १९९८-९९ के आसपास लखनऊ में 'पंच परमेश्वर' वर्ष, १९९९–२००० में हिंदी में पढ़ाई के दौरान एक पत्रिका का सहायक संपादक, २००० में गोंडा में रहकर स्वतंत्र पत्रकारिता, २००० से २००२ तक पंजाब के रोपड़ कार्यालय में 'अमर उजाला' समाचार पत्र में डिस्ट्रिक्टड कार्यालय में द्वितीय चीफ पद पर कार्यरत. २००२ से लेकर २००८ तक 'अमर उजाला' के पंजाब के कई शहरों में कार्यरत. सन् २००९ में दैनिक जागरण, दिल्ली कार्यालय का कार्य-भार ग्रहण और वहां २०१० तक कार्यरत. साथ ही टी. वी. केंद्र. में कार्यरत. २०११ से २०१३ तक 'स्वाभिमान टाइम्स' में कार्यरत. २०१३ में 'अहा! ज़िंदगी', जयपुर में कार्य-भार ग्रहण.

: संप्रति :

दैनिक भास्कर में मनोरंजन अनुभाग में कार्यरत.

: संपर्क :

जी-३ए, कमानवाला चैंबर, मोगल लेन, माहिम (प.),
मुंबई– ४०००१६. फ़ोन : २४४४५४७.

ई-मेल : chandidutt@gmail.com

से सिनेमा से, पढ़ने से (सिर्फ साहित्य से नहीं) एक तरह की समझदारी, चरित्र और संवेदना का विकास होता है. एम. ए. में मेरे गुरू रहे शैलेंद्रनाथ मिश्र. उन्होंने एक बार मेरे संकोच को तोड़ा. मैं बहिर्मुखी और अंतर्मुखी, दोनों एक साथ था. मैं अभिनय और बात अच्छी तरह कर पाता था लेकिन भाषण में नहीं खुल पाता था. शैलेंद्रजी ने फटकार लगायी और मैंने भाषण दिया. मैं तैयारी नहीं करता. मुझे उस समय शायद दूसरा पुरस्कार मिला था और उन्होंने कहा था, 'पहला और दूसरा पुरस्कार नहीं होता... सिर्फ़ पहला होता है.' उसके बाद मैं अपने खोल में अपने लिए जाता हूं. दूसरों के सामने खुला ही रहता हूं.

◈आपके पास भाषा का सलीका है, ख़ूब अच्छी कविताएं व कहानियां लिखते हैं, भाषा का सलीका कैसे सीखा?

स्कूल की परीक्षाएं चल रही थीं. परीक्षा देने जाता था. सभी को पता था कि पंडितजी का लड़का है तो मना करने का सवाल ही नहीं उठता था. पारंपरिक शिक्षा में अच्छा नहीं था और इसका ख़ेद भी नहीं था. उस शिक्षा का क्या अर्थ जो आपको डिग्रीधारी बनाती है. पढ़ने के साथ-साथ मेरा नया रास्ता खुलता गया. मेरी नयी रुचि फ़िल्मों में थी और मेरे अंदर दर्शक के बीज पड़ने लगे थे. पिता के साथ आल्हा, सत्यनारायण भगवान की कथा सुनने और रामलीला, नौटंकी तथा रामलीला देखने जाया करता था. मुझे संगीत पता था. याद आता है कि शिशु... लोरी के शब्द नहीं, संगीत समझता है, शब्द तो बाद में सीखेगा, अभी वह अर्थ समझता है. मैं ध्वनि नहीं समझता था, आस्वाद लेता था. वह एक एकाकी जीवन था पर बहुत भरा-भरा था. परंपरा और विशाल व्यक्तित्व के पिता हैं, जो परंपरा से निकले और खुली सोच के हैं मेरे पिताजी.

◈आप रंगमंच से कैसे जुड़े?

हाई स्कूल और इंटर करते हुए एकाएक उस महाविद्यालय में पहुंचा जहां मैं बिना छात्र हुए क़रीब बीस साल गुज़ार चुका था. एकाएक पांच साल के शिशु से पच्चीस साल का युवा बन गया था. इस बीच मैं रंगकर्मी बन चुका था. बहुत सारे नुक्कड़ नाटक किये. रंगमंच के नाटक लिखे, अभिनय किया. प्रस्तुतिपरक कार्यशाला में भाग लिया. इस कार्यशाला के कैप्टन सतीश आनंद थे और वागीश कुमार सिंह ने प्रशिक्षण दिया था. इसके अलावा सत्यव्रत राऊत और शीर्ष दोभाल भी शिविर में थे. मैं हर दिन क़िताब, सिनेमा, पुस्तकालय... उनसे जूझते हुए ट्रेन पकड़कर अपने शहर गोंडा मानकपुर जाता और वहां वर्कशॉप में हिस्सा लेता था. विजय तेंदुलकर के नाटक 'पंछी ऐसे आते हैं' की रिहर्सल चल रही थी. आधी रात को लौटता था. एक महीने तक यह जुनून रहा. गोंडा की रंगदीप, प्रभातश्री, आहट, दस्तक संस्थाएं थीं, जिनके साथ थियेटर कर रहा था. विष्णु प्रताप सिंह ने फ़िल्म बनानी शुरू की थी... 'घाव प्यार का.' उसके बारे में कुछ कॉमन दोस्तों से पता चला और उनसे मिला. उनसे दोस्ती भी अच्छी हो गयी पर फ़िल्में नहीं बन पायीं. बाद में उनके दो प्रॉजेक्ट्स से जुड़ा, 'कोहरा' और 'बिखरता परिवार.' पहली बार कैमरे का सामना किया.

यही समय था, जब मैं रंगमंच से जुड़ा. मज़ेदार बात कि अभिनय बाद में सीखा, अभिनय की ललक पहले हो चुकी थी. १९९९ में पापा के साथ दो दिन के लिए मुंबई आया था. उस समय मेरे लंबे बाल थे और यू पी के बहुतेरे युवा जो बिगड़ैल रूप में जाने जाते थे. टीचर ने जो कहा था, बहुत आहत हुआ था. वे बोले थे, 'तुम मिथुन बनना चाहते हो?' मैंने कहा था, 'मैं चंडीदत्त ही बनना चाहूंगा.' आप विश्वास नहीं करेंगे, मैंने १९८४-८५ से वर्ष २००० तक प्रतिदिन सिनेमा देखा. कभी-कभार क़िताब व फ़िल्म के बीच युद्ध होता था. इनके अलावा कुछ नहीं था मेरे पास...पिता और नींद...बस.

◈ जब कभी आप दुविधा में होते हैं तो उसके समाधान के लिए किस प्रकार ख़ुद को तैयार करते हैं?

संसार और समाज के अपने जो व्यक्तिगत संकट, मान्यताएं व भय हैं, वे मुझ पर बहुत कम लागू होते हैं. इसलिए मैं काफ़ी कम दुविधाओं से बचा हुआ हूं. फिर भी कभी कोई दुविधा खड़ी हो भी जाती है तो समय ख़ुद उससे निकलने के रास्ते सुझाता है. दूसरी बात, मेरा प्रमुख स्रोत पुन: एक नये रास्ते की तलाश संगीत होता है. उसे सुनकर मेरे समाधान निकलते हैं. बावजूद इसके कि मैं बेहद बेसुरा हूं और संगीत की कोई समझ नहीं है. इस बात में एक गंभीर अर्थ भी छिपा है कि किसी चीज़ से जुड़ने के लिए उसमें माहिर होना बिल्कुल ज़रूरी नहीं है. अगर आप निश्चित होकर व मासूम होकर (बनना नहीं) जायें तो वह भाव, रिश्ता, इंसान आपको स्वीकार करेगा.

◈ आज जिस तरह का साहित्य लिखा जा रहा है, उसके विषय में क्या कहना चाहेंगे?

जैसे बहुत से लोग कहते हैं कि भारत सोने की चिड़िया था, वैसे ही बार–बार गुज़रे दौर के लेखन की दुहाई दी जाती है. मेरा एकमात्र प्रश्न यह है कि सरोकार और अनुभव के बग़ैर कुछ भी कैसे रचा जा सकता है? आज साहित्य किसी भी जुड़ाव और अनुभव के बिना लिखा जा रहा है. मैंने ज़्यादातर लेखन, जिसे कई मित्र साहित्य मान बैठते हैं, प्रेम के बारे में किया है क्योंकि मैंने प्रेम को जिया है. मैंने भूख़ से मरते किसानों या दिल्ली के राजनीतिक उथल-पुथल के बारे में कभी कविता नहीं लिखी क्योंकि न तो मैं उसे जी पाया और न उसकी समझदारी विकसित हुई.

कहते हैं कि जो रचेगा, वह बचेगा, पर यह तय है कि जो पढ़े बिना, जिये बिना...जो जो रचता रहेगा, वह पाठकों के मन में बिल्कुल नहीं बचेगा. आज का अधिकतर साहित्य, जो जीवन, अभावों, संघर्षों, मूल्यबोध, इतिहास बोध के बिना रचा जा रहा है, वह किसी विलासिता से कम नहीं है. इन दिनों बहुतेरा साहित्य, अमूर्त भाषा और भाव के साथ लिखा जा रहा है जिससे जुड़ पाना सामान्य पाठक के बस का नहीं है. यही वह वजह है कि पाठक साहित्य से दूर हो रहा है.

सरल लिखना पॉपुलर लेखन मान लिया गया है लेकिन यह एक भ्रामक राय है. जल से सरल कुछ नहीं और वह जीवन के लिए बहुत ज़रूरी है. कठिन काव्य प्रेत बनना आज का पाठक स्वीकार नहीं कर सकता और इस बात को जल्द से जल्द हिंदी के साहित्यकारों को समझ लेना चाहिए. एक प्रमुख बिंदु यह भी है कि छपने-छपाने की चिंता से अधिक जीवन को संपूर्णता से जीने की चिंता और होड़ होनी चाहिए. आपकी क़िताब शेल्फ़ में पच्चीस क़िताबें रखी हैं और आपके जीवन में एक भी दीर्घकालिक संबंध नहीं है तो ऐसे कृत्रिम प्रकाशन से आपको या किसी और को क्या लाभ मिलेगा?

◈ आजकल जिस प्रकार की पत्रकारिता चल रही है, उस पर आप क्या कहना चाहेंगे?

मैं अपनी पत्रकारिता के बारे में बात करता हूं. आलोचना करने का अधिकार उसे है जो अपनी विधा में स्वयं संपूर्ण या कम से कम अधिक सक्रिय और योग्य हो. पहले रचिए. जो रच रहे हैं, उनकी आलोचना न करें. हम शब्दों के अपराधी हैं. हम काम करें, यह ज़्यादा ज़रूरी है. हम उम्मीद बहुत करते हैं, ज़िम्मेदारी नहीं निभाते. पत्रकारों से जितनी उम्मीदें करते हैं, उन्हें उतनी सुविधाएं और समर्थन नहीं दिया जाता. नाख़ून कटाकर ही शहादत नहीं होती. इसलिए लोगों को पत्रकारों के साथ खड़ा होना होगा.

◈ आप आजकल बॉलीवुड से जुड़े हैं, आपने अपनी मर्जी से इस कार्य को चुना या प्रबंधन की ओर से प्रदान किया गया?

यह प्रबंधन का निर्णय था. मेरा सिनेमा में ज्ञान है. जब मुझे मौक़ा मिला तो मैंने स्वीकार किया. मेरा मानना है कि सिनेमा दुनिया की किसी भी अन्य विधा या माध्यम से कम प्रभावी नहीं है.

◈ आप फ़िल्मी हस्तियों से मिलते हैं, इस विषय

में आपके अनुभव कैसे रहे?

पहली मेरी बात... फ़िल्मी हस्तियां कुछ विशिष्ट होती हैं, यह अपने आपमें भ्रम व मूर्खता है. उनसे मिलने पर कुछ विशिष्ट अनुभवों की आशा क्यों करते हैं? उनसे मिलने पर वही अनुभव होते हैं, जो मानव-मात्र से मिलने पर होते हैं. सच तो यह है कि सिनेमा का सामान्य जीवन से एक बड़ी इमेज़ के रूप में हम पर हावी है और हम अभिनेताओं और अन्य फ़िल्मी हस्तियों को उनके स्क्रीन की पहचान से जोड़कर देखते हैं. इसलिए सेलेब्रेटीज़ को भी अतिरिक्त तवज्जो देने लगते हैं. हम भूल जाते हैं कि ऐसा करते समय हम उन्हें सामान्य मानव समझने से इंकार कर देते हैं. जैसे एक शिक्षक क्लास में पढ़ाता है, वेश्या देह व्यापार करती है. अभिनेता अभिनय करता है. उसको उसके पेशे से जोड़कर देखना चाहिए. हर किसी से विशिष्ट व्यवहार की उम्मीद क्यों की जाये? मेरे पेशे के हिसाब से मुझसे सभी ग़र्मजोशी से मिलते हैं.

◈ आज की सबसे चर्चित साइट... फ़ेसबुक को आप किस रूप में देखते हैं?

फ़ेसबुक सिर्फ़ एक मंच है, उसके अलावा कुछ नहीं है. फ़ेसबुक पर जो कुछ अच्छा या बुरा है, वह हमारे या आपके जेहन की अच्छाई या गंदगी है. यह ठीक वैसे ही है, जैसे बम का आविष्कार हिंसक जानवरों को ख़त्म करने और रास्ते बनाने के लिए पहाड़ तोड़ने की ख़ातिर किया गया होगा, पर उसका उपयोग/प्रयोग लोग एक दूसरे की जान लेने के लिए करने लगे. ज़ुकरबर्ग ने इस साइट का निर्माण नितांत वैयक्तिक कारणों से किया था, पर भारत में लोग कविता पर कविता... कविता पर कविता छापने और प्रेम का रोना रोने के लिए प्रयोग करने लगे तो इसमें फ़ेसबुक की क्या ग़लती और क्या महानता? यह एक तकनीकी मंच है, जिसकी गति और नियति उपयोगकर्ता करते हैं.

◈ जिस तरह की रिलेशनशिप आज प्रचलित हो रही हैं, उनका भविष्य क्या है?

हर तरह के रिश्ते में कमिटमेंट ज़रूरी है. बिना कमिटमेंट के कोई भी रिश्ता खालीपन ही देकर जाता है. हम जब भी इस तरह के प्रश्न पूछते या उत्तर देते हैं तो हमारे मन में कहीं न कहीं बड़ा कारण और कारक सेक्स होता है. जबकि संबंधों में विश्वास और समर्पण महत्वपूर्ण होता है. सेक्स चिंतन का इतना बड़ा विषय नहीं होना चाहिए. संबंध वही टिकेंगे जो हमें लंबा संतोष दें. संबंध भी क्षणिक संतोष के लिए बनाये जाते हैं, बनाये जाते रहेंगे, पर वे कालजयी नहीं, क्षणभंगुर ही होते हैं. हम भ्रमित समाज से जुड़े हैं. अपने इतिहास में उन्मुक्ती हैं और वर्तमान में रूढ़ हैं. हमें इन सबसे निकलकर जीवन जीने का नज़रिया विकसित करना होगा. एक ख़ास बात ज़रूर कहना चाहूंगा कि कोई व्यक्ति — स्त्री या पुरुष अपने संबंधों में यौनिकता के साथ आपके घर तक या बिस्तर तक नहीं पहुंच जाता. हमें उस पर टिप्पणी करने या आलोचना करने का कोई अधिकार नहीं है.

◈ आपने कई शहरों में काम किया मुंबई आपके लिए क्या है?

मुंबई मेरे स्वप्नों का शहर है और मुझे बहुत पसंद है. मेरी बहुत सारी योजनाएं हैं, जिन्हें पूरा करना मेरा लक्ष्य है.

मधु अरोड़ा

एच-१/१०१, रिद्धि गार्डन्स,
फिल्म-सिटी रोड, मालाड (पूर्व), मुंबई-४०००९७.
मो. : ९८३३९५९२१६

कविता

पावस में जब...

✍ आनंद तिवारी पौराणिक

श्यामल घन काली कूची नभ रंग जाये,
बूंदों की शीतल फुलझड़ियां बरसा जाये.
तुम कुंतल तनिक बिखरा लेना,
आंचल में सावन भर लेना.
मौसम छेड़े मल्हार कभी,
पुरवाई तन छू जाये.
सोनजुही की महक हवाओं को देना,
जब रीता-रीता सा हो मन.
अनमना-सा हो, बोझिल तन,
दर्पण की धूल उड़ा देना.
मेघों के कानों में कह,
संदेश प्रणय का भिजवाना.

श्री राम टाकीज़ मार्ग
महासमुन्द (छ. ग.)-४९३४४५
मो.: ९७५३७५७४८९

जगतदादी : औव्वैयार

✍ राजम पिल्लै

'हे भगवान गणेश, विघ्नहर्ता पिल्लैयार, मुझे बूढ़ी बना दो! रूप, बाधा है, यौवन रुकावट है; ज्ञान-फल का रसास्वाद करना चाहती हूं मैं, इन सब विघ्नों को दूर कर दो!'

प्रार्थना करती रही एक बालिका किशोरी, भगवान शिव के पिल्लै (पुत्र) गणेश से! सुंदर, तेजस्वी, प्रतिभाशाली लड़की थी वह! यौवन की दहलीज़ पर पहुंचते-पहुंचते समझ गयी थी कि स्त्री के लिए रूप शत्रु बन सकता है; यौवन, अग्नि-परीक्षा का अंतहीन सिलसिला बन सकता है. पिता के आंगन में चहचहाती चिड़िया कल पिंजरे में बंद कर दी जायेगी; गीत का गला घोंट दिया जायेगा; सखियों के साथ के खेल-खिलवाड़ छूट जायेंगे; यहां तक कि रक्त-संबंधी बंधु-बांधवों से भी मनचाहे समय पर मिलने की मनाही हो जायेगी! यह सब भी वह सहन कर जाती लेकिन उसके अंदर जो ज्ञान-पिपासा थी, बुद्धि प्रखरता थी, काव्य-प्रतिभा थी, उन सबको तो सदा-सर्वदा के लिए किसी भारी संदूकची में भरकर किसी अंधेरी कोठरी में छिपा देना पड़ेगा! वह तो आशु-कवि थी, अदभुत स्मरण शक्ति की धनी थी: उसे घर-गृहस्थी के रेशमी-सुनहरी रस्सियों में जकड़ दिया जायेगा. उसका आकाश सिमट जायेगा, उसकी धरती सिकुड़ जायेगी!

विघ्नहर्ता, मंगलकर्ता गणेश ने बालिका की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया. बालिका असमय ही वृद्धा हो गयी.

कौन थी वह बालिका? किस भू-प्रदेश की थी? इन तथ्यों से, ब्यौरों से शायद कोई बहुत बड़ा फ़र्क़ नहीं पड़ता! वह गुजरात की भी हो सकती थी और बंगाल की भी. वह कश्मीर की भी हो सकती थी, कन्याकुमारी की भी! और नाम? नाम में क्या रखा है?

यह कथा है- 'औव्वैयार' की! 'औव्वै' - यानी पूज्य और 'यार' आदरसूचक तमिल शब्द! तमिलनाडु को याद नहीं, उस बालिका का नाम क्या था, गांव कौन-सा था. हां, पर सदियों से, तमिलनाडु का ककहरा पढ़ने वाला बच्चा और व्यासपीठों से प्रवचन करने वाला भाषा-शिरोमणि, हल चलाने वाला हलवाहा और रसोईघर में भात पकाने वाली गृहस्थन पहचानते हैं. 'औव्वै पाट्टी' को — औव्वै दादी को! वह तमिलनाडु की ही नहीं, विश्व में जहां-जहां तमिल भाषा-भाषी हैं उन सबकी 'दादी' है. तमिल भाषा में स्वर-क्रम में जहां 'औ' आता है वहां 'औव्वे' कहा जाता है, और कमर झुकी हुई लेकिन सिर उठाये हुई, लाठी टेककर चलती हुई वृद्धा औव्वै का रेखाचित्र बना हुआ होता है.

औव्वैयार का रचना-काल कब का माना जाये इस पर शोधकर्ताओं में मतभेद है. माना यह जा रहा है कि एक नहीं, दो-दो औव्वैयार हुई हैं. एक, तमिल साहित्य के 'संघम् काल' (लगभग १ और २ सदी) में और दूसरी, चोलवंश के राज्य-काल (१०वीं सदी) में हुई. लेकिन, दोनों ही औव्वैयारों के साथ विपुल मात्रा में काव्य-रचना का इतिहास जुड़ा है. इन रचनाओं में भक्ति-प्रधान गीत भी हैं — परमेश्वर शिव के पुत्रों — गणेश (पिल्लैयार) और कार्तिकेय (मुरुगन, सुब्रह्मण्य स्वामी) की स्तुतिपरक रचनाएं अधिक हैं. और नीति-प्रधान भी.

सबसे महत्वपूर्ण और अभूतपूर्व और अविस्मरणीय

बात यह है कि औव्वैयार को समकालीन राजाओं, सामंतों द्वारा दिया गया राज-सम्मान और साथ ही छोटे-छोटे गांवों के अनपढ़ किंतु सयाने किसानों-मज़दूरों द्वारा दिया गया स्नेह और आदर! औव्वै जिस सहजता से परस्पर-शत्रु राजाओं के दरबारों में निर्विघ्न आया-जाया करती थी इतनी ही गंभीरता से ग़रीबों के झोपड़ों में भी. उसके द्वारा रचे गये स्तोत्र पंडितों के लिए भी सम्माननीय थे और भक्तों के लिए भी प्रिय.

'औव्वै' की तमिल भाषा के लिए ही नहीं, समग्र विश्व-साहित्य के लिए दी गयी अनूठी भेंट है — 'आत्तिचुड़ी.' बच्चों को 'अ, 'आ' सिखाते समय उसके साथ ही जुड़ा हुआ एक नीति-वाक्य! परिवार की दादी जिस प्रकार से बच्चे को प्रिय और पौष्टिक दोनों प्रकार के आहार सहजता से खिला-पिला देती है वैसे ही औव्वैयार ने, स्वर-परिचय और नीति-परिचय साथ-साथ करा दिया है.

'औव्वैयार' का जीवन और उसका साहित्य एक अद्‌भुत रोमांच से हमें भर देता है. आज २१वीं सदी के दूसरे दशक में यह सवाल हमें परेशान किये बग़ैर नहीं रह सकता कि क्या स्त्री की देह हमेशा ही उसके विपक्ष में रहेगी? क्या स्त्री को किसी भी प्रकार का व्यक्तित्व-विकास करना हो तो पहले अपने शरीर को, उम्र को नकारना पड़ेगा, खारिज करना पड़ेगा?

तमिलनाडु में, राज्य-सरकार बड़ी धूम-धाम से 'औव्वै महोत्सव' मनाती है जिसमें साहित्यकार, भाषा-विद्, भाषा-प्रेमी औव्वैयार पर शोध-परक आलेख पढ़ते हैं, वक्तव्य देते हैं. सामान्य जनता तो यह 'औव्वै महोत्सव' अपनी तरह से बहुत पहले ही मनाती आयी है. तमिलनाडु में औव्वै की भव्य प्रतिमा उस गांव में स्थापित है जहां निजंधरी (लिजैंडरी) कथाओं के अनुसार औव्वै को शिव-पुत्र मुरुगन ने खेल-खिलवाड़ करते-करते दर्शन दिया था और आशीर्वाद दिया था कि वह अथक, बेरोक-टोक अपनी वाङ्मय सेवा को ज़ारी रखेगी, ज्ञान-फल स्वयं भी चखेगी और दूसरों को भी उसका रसपान करायेगी!

'औव्वै पाट्टी' है, वृद्धा है; यदि वह वृद्धा न होती तो क्या राज दरबारों में उसे सम्मान का स्थल मिल पाता? क्या वह 'पाट्टी' नहीं होती तो आम किसान की पत्नी तक उसे अपने घर में घुसने देती? क्या 'दीदी', 'मौसी', 'बुआ'— औव्वै का घर-परिवारों तक में भी स्वागत हो पाता?

सबसे महत्वपूर्ण और आज भी खुले घाव की तरह चिलचिलाता प्रश्न यह है कि सदियों पहले की बालिका को क्यों ईश्वर से यह प्रार्थना करनी पड़ी कि 'मेरा रूप मेरा यौवन नष्ट कर डालो; मुझे बूढ़ी बना दो!' हमारे पुराणों में — इतिहास में जीवन का सुख और दीर्घकाल तक भोगने के लिए पुत्रों से यौवन की भेंट चाहनेवाले राजा ययाति की तो कथा है लेकिन ज्ञान-पिपासा की तृप्ति के लिए आत्म-विकास के लिए 'असमय वृद्ध' होने की आकांक्षा और किसी ने की हो, यों पता नहीं चल पाता!

विश्व-भर की 'असमय वृद्धा' हुई बालिकाएं, किशोरियां, युवतियां प्रतीक्षा में हैं कि शायद इतिहास अपने को अब और नहीं दोहरायेगा.

✍ ६०१, ए रामकुंज को.हॉ.सो.,
रा. के. वैद्य रोड, दादर (प.),
मुंबई-४०००२८.
मो.:९८२०२२९५६५०
ई-मेल : ravindra.pillai@gmail.com

पाठकों/ग्राहकों से निवेदन

कृपया 'कथाबिंब' की सदस्यता राशि मनी ऑर्डर से भेजते समय फ़ॉर्म पर अपना नाम, पता, पिन कोड सहित अंग्रेज़ी में साफ़-साफ़ लिखें. मनीऑर्डर भेजने के बाद पोस्टकार्ड पर पूरे पते सहित इसकी सूचना अवश्य दें. आपकी सदस्यता अगले अंक से लागू होगी. पते में परिवर्तन की सूचना भेजते समय कृपया नये पते के साथ पुराने पते का उल्लेख करना न भूलें.

- संपादक

डीटीपी के लिए संपर्क करें

समाचार पत्र, पुस्तकों व पत्रिकाओं, इनव्हिटेशन कार्ड, विजिटिंग कार्ड के डीटीपी, ले-ऑउट और डिझाइन के लिए संपर्क करें.

सुगी आर्ट्स

३०२, वडाला उद्योग भवन, वडाला,
मुंबई-४०० ०३१.
मो.नं.: ९८३३५४०४९०/९८९२८३११४६

रेशम के धागों की रचनात्मकता वाली कहानियां

✍ अशोक वशिष्ठ

सूर्यबाला की लोकप्रिय कहानियां : डॉ. सूर्यबाला
प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, ४/१९, आसफ अली रोड, नयी दिल्ली-११०००२ **मू.** २५० रु.

अपनी रचनात्मकता और मूल्य चेतना पर गहरा विश्वास होने के कारण हिंदी कहानी जगत में अपनी प्रतिष्ठा क़ायम करने वाली 'सूर्यबाला' ऐसी कहानीकार हैं जो अपनी कहानियों में मार्मिकता को पूरे प्रभाव के साथ उतारती हैं. आपकी कहानियों में जहां युगबोध की संवेदना है वहीं कहानियों को मुक्त आकाश प्रदान करने की ललक भी है.

समीक्ष्य कथासंग्रह 'सूर्यबाला की लोकप्रिय कहानियां' में चौदह कहानियां संकलित हैं. लगभग सभी कहानियों के पात्रों का निजी दर्द वह रेशा है जो लेखिका की रचनात्मकता के तारों को रेशम के कीड़ों की तरह खींचता है. आपकी कहानियों की विशेषता है कि प्रत्येक कहानी की भाषा और कथ्य पूरी तरह भिन्न हैं.

संकलन की पहली कहानी 'हां, लाल पलाश के फूल... नहीं ला सकूंगा...' में वृंदा के पिता राखाल बाबू को अपनी ईमानदारी के बावजूद ज़ेल हो जाती है. राखाल बाबू दुखी होकर कहते हैं — 'काश! मैं सच न बोलता, घूस लेता. चोरी करता.' अनूप बचपन से वृंदा से लगाव रखता है लेकिन चाहते हुए भी वह वृंदा को अपना नहीं बना पाता. नहीं ला पाता वह लाल पलाश के फूल. कहानी 'एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम' में सूर्यबाला ने एक ऐसे मशहूर ग़ज़ल गायक 'अली अहमद मुराद' की मज़बूरियों को उजागर किया है जो वृद्धावस्था में अपनी आवाज़ खो बैठता है और कुछ रुपये कमाने के लिए उसे अपने शागिर्द, जो अब ग़ज़ल गायक उस्ताद 'शब्बन उस्ताद' के नाम से मशहूर है, के पास काम मांगने जाना पड़ता है. काम भी सारंगी बजाने का. बेटी जुबेदा के ससुराल से आने की ख़बर पाकर ख़र्च चलाने की फ़िक्र उस्ताद को अपने शागिर्द के पास जाने को मज़बूर करती है.

वृद्धावस्था की मज़बूरियों को रेखांकित करती हुई एक और कहानी 'बाऊजी और बंदर' सूर्यबाला की संवेदनशीलता और उनके युगबोध का परिचय देती है. वृद्धावस्था में अपने बेटे और बहू के लिए अनुपयोगी हो चुके 'बाऊजी' जब तब गांव से शहर आते रहते हैं. बहू अबकी बार 'बाऊजी' के लिए काम ढूंढ़कर रखती है. काम है घर के पिछवाड़े उगायी गयी सब्ज़ियों की रखवाली और बंदरों को भगाना. पत्नी भक्त उनका पुत्र भी इस चाल में शामिल है. उनका मानना है 'घिसे कल पुरजे वाली देह लिये हिलती-डुलती चूलें सहेजे चले आते हैं बाऊजी. पता नहीं ये बूढ़े लाग मोह-माया का इतना ओवर स्टॉक क्यों भरे रहते हैं. इनके दिल न हुए माया के दलदल हो गये.'

'मेरा विद्रोह', 'तोहफ़ा' और 'दूज का टीका' कहानियां क़रीब-क़रीब एक जैसे धरातल पर चलते हुए अंग्रेज़ी माध्यम में पढ़ाये जाने की विडंबना से बच्चों में पनपनेवाली हीन भावना और कुंठा अथवा व्यक्ति में असीमित लोभ और महत्वाकांक्षा को रेखांकित करती हैं.

संग्रह में चौथे क्रम की कहानी 'कंगाल' देश में बेरोज़गारों की स्थिति को बख़ूबी रेखांकित करती है. 'बिनै भइया' उच्च शिक्षित होने के बावजूद बेरोज़गार और बेचारा है. परिवार उस पर तरस खाता है. वह सबके छोटे-मोटे काम करता रहता है. 'पूरे चार साल का बेरोज़गार, नकारा कोने वाले कमरे में कंपटीशन मास्टर और कैरियर एंड कोर्सेस लिये बैठा रहता है.' यह बेरोज़गारी क्या बस आर्थिक तंगहाली है? नहीं, शायद ऐसी लाचारी, जिसने उसके समूचे व्यक्तित्व का रस चूसकर उसकी पूरी की पूरी मानसिकता को पंगु बना दिया है.

सूर्यबाला की कहानियों के पात्रों के दर्द का रेशा उनकी रचनात्मकता के तार किसी रेशम के कीड़े की तरह खींचता है. यही हुआ है 'न किन्नी न' में. यह कहानी 'किन्नी' के चेहरे की उदासी से उपजी है. किन्नी की बिजनौर वाली

संपन्न मौसी के रूप रंग और उनकी अमीरी से किन्नी प्रभावित है. वही मौसी अपनी बेटी 'रोजी' के लिए 'आकाश' के साथ रिश्ता तय कर देती है और विवाह हो जाता है. किन्नी आकाश को लेकर जो सपने सजा रही थी वे पल भर में टूट जाते हैं. तीसरे बच्चे के जन्म के समय रोजी की मृत्यु हो जाने के बाद मौसी किन्नी के सामने बच्चों की देखभाल के उद्देश्य से आकाश को अपना लेने का प्रस्ताव रखती है. भाई-भाभी नहीं चाहते कि वैसा हो क्योंकि टीचर किन्नी के वेतन में से मिलने वाली आधी धनराशि फिर मिलना बंद हो जायेगी. इन बातों को सुनकर किन्नी अपने जीवन से हार न मानते हुए मौसी का प्रस्ताव स्वीकार कर लेती है.

स्त्री की पीड़ा और उसके साथ हो रहे उत्पीड़न की गाथा को सूर्यबाला ने बख़ूबी उजागर किया है अपनी कहानी 'रमन की चाची' में. लोंदे-पेंदे, दोहरी देह और गहरे रंग वाले चाचा नवाबलाल की नयी पत्नी नवाबिन चाची को घर में बेशऊर, बेग़ैरत, बेहूदी, फूहड़ घोषित कर दिया जाता है. दिन भर कोल्हू के बैल की तरह घर के काम में लगी रहने वाली नवाबिन चाची एक दिन ठोकर खाकर हंसुए पर गिर पड़ती है और उसका पैर कट जाता है. उपेक्षा की शिकार नवाबिन चाची के शरीर में विष फैल जाता है और इलाज़ मिलने से पहले ही वह दम तोड़ देती है. क्या स्त्री की यही नियति है?

कहानी 'सुम्मी की बात' की सुम्मी बच्चों के लिए 'मम्मी' काम करने वाली महरी के लिए 'बीबीजी' और पति के लिए 'सुनो' बनकर रह गयी है. वह कभी अपनी 'अम्मा की सुम्मी' भी रह चुकी है. सबके सामने मुस्कुराती रहने वाली सुम्मी अकेले में अनायास गुमसुम रहती है.

सूर्यबाला जहां समाज के खोखलेपन को रेखांकित करती हैं वहीं अपनी कहानियों के माध्यम से आदर्श चरित्र की महत्ता को भी स्थापित करती हैं.

कहानी 'होगी जय, होगी जय... हे पुरुषोत्तम नवीन!' का नायक फॉरेस्ट ऑफ़ीसर अरुण वर्मा ईमानदार, सीधा-सादा बाल बच्चेदार आदमी है फिर भी अपने कैरियर में बदरंगी थिगलियां लगवाता तबादलों का फरमान लिये भटकता रहता है. वह एक एम एल ए के भतीजे का ट्रक जंगल से लकड़ी ले जाते पकड़ लेता है. अन्य साथी 'विनाशकाले विपरीत बुद्धि' ऐसा मानते हैं. वे मानते हैं कि अब अरुण वर्मा ब्लैक लिस्टेड हो जायेगा. लेकिन इस सबसे बेफ़िक्र अरुण वर्मा 'सस्पेंशन लेटर' मिलने के बाद अपने पिता की तरह बड़े मज़े से पत्नी के हाथ के बने मूली के पराठे और पालक-बैगन की सब्ज़ी खाता है.

अरुण वर्मा को यह ईमानदारी और चारित्रिक दृढ़ता उसके डिप्टी इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल पिता से मिली है. अरुण वर्मा का बेटा अपने दादा की ईमानदारी की मिसाल को बार-बार सुनना चाहता है. इस प्रकार सूर्यबाला यह दर्शाने में सफल होती हैं कि अच्छे संस्कार पीढ़ी दर पीढ़ी संक्रमित होते हैं.

कहानी 'बिहिश्त बनाम मौजीराम की झाड़ू' ऐसे सफ़ाईवाले मौजीराम की कहानी है जो डुप्लेक्स फ़्लैटोंवाले डायमंड टॉवर्स जैसे विशालकाय कॉम्प्लेक्स में झाड़ू लगाता है. वह इंपोर्टेड इंपाला और मर्सिडीज़ को देखकर गौरवान्वित महसूस करता है. वहां की चकाचौंध देखकर मौजीराम की सपनीली आंखें जैसे कहती हैं — 'दुनिया में कहीं बिहिश्त है तो यहीं है.'

कहानी 'क़ाग़ज की नावें, चांदी के बाल' की नायिका 'राजी' अपने पिता के साथ रहती है. मुक़दमा जीतकर पिता को यह अधिकार मिला है. मां से अलग रहने वाली 'राजी' को महलों की राजकुमारी जैसा सुख उपलब्ध है. इतनी संपन्नता के बीच भी वह ख़ुश नहीं है. वह खिलखिलाकर हंस भी नहीं पाती. उसे रह रहकर याद आता है उसकी कोठी के सामने बंजर मैदान में बनी 'पंच कुठरिया' में रहने वाला वह लड़का जो अभावों में रहते हुए भी ख़ुश था.

संग्रह की अंतिम कहानी 'माय नेम इश ताता' में सूर्यबाला की संवेदनशीलता अपने चरम पर है. आज के भौतिकतावादी युग में जहां पति-पत्नी दोनों नौकरी करते हैं वहां सबसे अधिक उपेक्षित रहते हैं बच्चे. सुजाता ऐसी ही एक बच्ची है. शौनक और नीना चाहते हैं कि सुजाता का एडमीशन शहर के बेस्ट 'प्रेप' में हो, एडमीशन टेस्ट के लिए सुजाता को रटाया जाता है कि मैडम के पूछने पर वह अपना नाम अंग्रेज़ी में बताये. बच्ची बड़ी उमंग से पूरे दिन 'माय नेम इश ताता' रटती रहती है. मगर लाख तैयारियों के बावजूद सुजाता मैडम के पूछने पर जैसे कसम खा लेती है कुछ भी न बोलने की. अंततः उसका एडमीशन नहीं होता. 'ताता' की देखरेख के लिए बड़ा हिसाब लगाकर शौनक की मां और आया में से फ़ैसला आया के पक्ष में हुआ था क्योंकि मां को साथ रखने पर ख़र्च अधिक होता. लेकिन आया द्वारा काम छोड़ने पर मज़बूरी में शौनक अपनी मां को बुलाकर ले आता है. 'दादी' के आने पर धीरे-धीरे 'ताता'

और दादी के बीच स्नेह और प्यार का नाता जुड़ जाता है.

मूल्य चेतना से भरपूर समाज की विसंगतियों को रेखांकित करतीं सूर्यबाला की कहानियां पाठक को एक स्पष्ट सोच धारण करने को प्रेरित करती हैं और संवेदना से दूर होते जा रहे समाज को झकझोरती भी हैं.

सी-६०३, सागर रेसीडेंसी, सेक्टर-२७, नेरुल (पू.) नवी मुंबई-४००७०६.
मो.: ९८६९३३७६१८

मानवीय संवेदना की सशक्त कहानियां

डॉ. रूपसिंह चंदेल

'चुनी हुई कहानियां' : अमरीक सिंह दीप
प्रकाशक : अमन प्रकाशन, १०४ए/८०सी, रामबाग, कानपुर-२०८०१२ **मूल्य :** ३५०/-

चर्चित वरिष्ठ कथाकार अमरीक सिंह दीप सतह से जुड़े कथाकार हैं. यही कारण है कि उनके पात्र और विषय हमारे अंदर उतरते चले जाते हैं. वह कहानी बुनते नहीं कहते हैं. भाषा पर जो अधिकार उन्होंने पाया है वह अद्भुत है. ऐसी भाषा सतत अध्ययन और अनुभव की गहनता से अर्जित की जाती है. कहानियों से गुज़रते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि उनके लिए कहानी कहना तलवार की धार पर चलना जैसा होता है. मज़ाल है कि एक भी शब्द अनावश्यक प्रतीत हो या कि पात्र की किसी गतिविधि को पाठक यह कहकर खारिज़ कर दे कि यह तो लेखक की मात्र कल्पना है. नहीं! अमरीक सिंह दीप पात्रों के अंदर प्रवेश कर उनकी स्थितियों, हाव-भाव, वातावरण आदि का सूक्ष्म अध्ययन करते हैं और उसके पश्चात ही उसे कहानी में उतारते हैं. ऐसा उनकी एक नहीं 'अमरीक सिंह दीप : चुनी हुई कहानियां' की सभी कहानियां पढ़कर प्रतीत हुआ.

दीप जी के पात्र प्रायः हाशिए पर पड़े हमारे आस-पास के वे सजीव पात्र हैं जिनसे हम हर दिन मिलते हैं. भूख, संत्रास, शोषण, दमन, भ्रष्टाचार, छीजती मानवीय संवेदनाओं आदि पर जिस गंभीरता से दीप जी ने लिखा है उसकी जितनी प्रशंसा की जाये कम है. मैं अचंभित हूं कि उन जैसे सशक्त रचनाकार के बजाये हिंदी वाले हल्की कहानियां लिखने वालों की चर्चा में कैसे डूबे रहे. क्या इसलिए कि दीप जी न इनकम टैक्स विभाग में थे न सेल्सटैक्स में या न ही ऐसी स्थिति में थे कि किसी आलोचक/समीक्षक या संपादक को कोई लाभ पहुंचा सकते. संग्रह से उनका ही कथन देना उचित लग रहा है : 'साहित्य देश का विवेक है. किसी भी देश की नब्ज़ का पता उसके साहित्य से ज्ञात होता है. गोकि बाज़ारवाद के इस प्रचारवादी युग में हर शय, यहां तक कि इंसान भी क्रय-विक्रय का सामान हो चुका है. ...हर माध्यम से खुद और अपनी कहानियों का प्रचार करने में जुटे हुए हैं. इसके लिए इन्होंने अपने संगठित गुट और गिरोह बना लिये हैं. आलोचक तैयार कर लिये हैं. कुछ मिल-जुल पत्रिकाएं भी निकालने लगे हैं. ये सब यूं दर्शा रहे हैं जैसे इनकी पीढ़ी ही लिखने में निष्णात है, ये जो लिख रहे हैं वही सर्वोत्तम और श्रेष्ठ है, पिछली सारी पीढ़ियां घास खोदती रही हैं....' (मेरी कहानियां और कुछ पत्र)

समीक्ष्य संग्रह की एक भी कहानी ऐसी नहीं जिसने मुझे सोचने के लिए विवश नहीं किया. 'तीर्थाटन', 'फ्रीडम फाइटर' और 'कालाहांडी' कहानियों ने मुझे हिलाकर रख दिया. तीनों ही उनकी बहुचर्चित कहानियां हैं, लेकिन अन्य कहानियों के पात्र और विषय भी पाठक को उद्वेलित किये बिना नहीं रहते. 'तीर्थाटन' एक ऐसी विधवा स्त्री की कहानी है जो पति की मृत्यु के पश्चात लंबे समय तक शोक में डूबी पूजा-पाठ आदि में समय व्यतीत करने का प्रयत्न करती है, लेकिन धीरे-धीरे उसकी अंतश्चेतना जाग्रत होती है और बेटे-बहुएं उसमें एक ऐसा परिवर्तन देखने लगते हैं जिसकी कल्पना वह कभी कर ही नहीं सकते थे. बड़ा बेटा और बहू अधिक ही क्रूर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं मां के परिवर्तन पर. वह पूजा-पाठ छोड़कर साहित्य और संगीत में रम जाती है और एक परिचित श्रीधर के बुलावे पर तीर्थाटन के लिए वृंदावन चली जाती है. बड़ी बहू के उद्गार दृष्टव्य हैं — 'चूल्हे में झोंको ऐसी भूख को ...ज़िन्दगी-भर भरपेट भकोसा फिर भी नहीं मिटी ...थू है, ऐसी औरत की जात पर.' अंततः बेटे-बहू मां की उस कुटिया (कोठरी) की एक-एक वस्तु जलाकर ख़ाक कर देते हैं, जिसमें साहित्य, संगीत की कैसेट्स सहित बहुत कुछ था.

'फ्रीडम फ़ाइटर' रिश्वतखोरी का एक ऐसा उदाहरण

प्रस्तुत करती है, जो आज क़दम-क़दम पर हमारे समक्ष उपस्थित है. गंडा सिंह बिना कुछ किये ऐश की ज़िंदगी जीता है, क्योंकि उसने समय की नब्ज़ पहचान ली है. उसे पता है कि किसे कैसे ख़रीदा जा सकता है. वह एक बोतल शराब पर 'फ्रीडम फाइटर' का पहचान पत्र हासिल कर लेता है. कर नहीं लेता, पहचान पत्र बनाने वाला व्यक्ति स्वयं उसकी आयु दस वर्ष कम दिखाकर अर्थात १९४० के बजाये १९३० की पैदाइश दिखाकर और वही सर्वत्र बताने की ताक़ीद करके उसे वह आईडी दे देता है. नीचे तक जड़ें जमा चुकी रिश्वतखोरी के बल पर इस देश में कुछ भी हासिल किया जा सकता है.

'चोर' एक मार्मिक कहानी है, जिसमें घर में काम करने वाली नौकरानी जो पढ़ने-लिखने की हसरत रखती है और कहानी का पात्र लेखक जो उसे पढ़ता देखना चाहता है के साथ लेखक की पत्नी और बच्चों की यह कहानी एक ऐसे सच को उद्घाटित करती है जिससे गुज़रने के बाद पाठक विचलित हुए बिना नहीं रह पाता. अंग्रेज़ी बोलने वाली गुड़िया खो गयी है या कहना चाहिए कि चोरी हो गयी है. पत्नी का मानना है कि उसे काम करने वाली लड़की ले गयी होगी. और यह सच था, लेकिन लेखक इस सच का सामना होते ही लड़खड़ा जाता है. लड़की उस गुड़िया को सामने रख कॉपी पेंसिल लिये किसी स्वप्न-यात्रा पर निकली हुई थी और गुड़िया 'ओ फॉर ओरेंज—पी फॉर पेन...' बोल रही थी. लेखक 'चोर की तरह अपने आपमें छिपने के लिए कोई कोना तलाशने लगता है'. समाज और व्यवस्था पर प्रश्नचिन्ह लगाती है कहानी.

'बेस्ट वर्कर' सरकारी तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार को उजागर करती है, जहां ईमानदारी से काम करने वाले व्यक्ति को कूड़े में फेंक दिया जाता है और चाटुकारों ...अफसरों के घरों में काम करने वालों को बेस्ट वर्कर पुरस्कार दिये जाते हैं. अभिमन्यु मिस्त्री एक ऐसा ही वर्कर है, जो काम में माहिर लेकिन चाटुकारिता से दूर और इसी बात की अकुशलता का परिणाम उसे जिस रूप में भुगतना पड़ता है वह दृष्टव्य है. अफ़सर उसे तरह-तरह से प्रताड़ित करते हैं, अपमानित करते हैं और वह शराब की शरण चला जाता है. शराब के नशे में ...'लपटों की लकीरों से कई आकृतियां बन-बुझ रही थीं — शक्ति-संपन्न उच्च सिंहासनों पर विराजमान छटे मुस्टंडे चेहरे; पैने सींगों और खूंखार पंजों वाले प्रबंधक, अग्रजन—पर्यवेक्षक—कार्यवेक्षक! सब साले चोर हैं. ऊपर की कुर्सी से लेकर नीचे के स्टूल तक...' अभिमन्यु मिस्त्री का यह कथन कितना सच है.

'सांप' एक अद्भुत कहानी है. बोस्की सपेरों के गांव अपने मित्र शेखर के साथ उनकी स्थितियां देखने और उनसे बातचीत करने जाती है अपने संपादक के निर्देश पर. शहर लौटने की बस नहीं मिलती और रात का घना अंधेरा. दोनों को संपेरों के मुखिया के यहां रात बितानी होती है. वे मुखिया पर संदेह करते हैं कि ग़रीब व्यक्ति रात उनकी हत्या कर उनका सामान लूट लेगा. लेकिन मुखिया उन्हें हतप्रभ करता जब रात देर से उनके सामने दूध लेकर आ उपस्थित होता है और कहता है, 'महारानी बिटिया, गांव से आप दोनों के लिए थोड़ा दूध लेकर आया हूं. आपने ठीक से खाना नहीं खाया, सोचा...' और कहानी का यह अंत किसी को भी अंदर तक आप्लावित किये बिना नहीं रह सकता.

दीप जी के इस संग्रह पर एक लघु शोधप्रबंध लिखा जा सकता है और लिखा जाना चाहिए, लेकिन समीक्षा की अपनी सीमा होती है, अस्तु सभी कहानियों पर पृथक प्रतिक्रिया देना संभव नहीं. अपनी बात समाप्त करने से पहले 'कालाहांडी' कहानी के उल्लेख के बिना समीक्षा अधूरी रहेगी. कालाहांडी उड़ीसा का दुर्भिक्ष प्रभावित क्षेत्र है, जहां की भयानक ग़रीबी और ग़रीबों के शोषण को जिस गंभीरता से कहानी में दीप जी ने अभिव्यक्त किया है वह रोंगटे खड़े कर देने वाला है. 'एक झोंपड़े के आगे नरकंकालों की भीड़ जुटी हुई है. भीड़ की दरारों से चीख़ें और कारुणिक रुदन रिस रहा है. ---अभी-अभी कुछ क्षण पहले एक बच्चे ने भूख से दम तोड़ा है.' एक और उदाहरण ...'मेरी मुट्ठियां कस जाती हैं ...भूख, ग़रीबी — अज्ञान — गहन अंधकार यानी कि कालाहांडी. --- मुरझाये हुए जंगल—तपती हुई चट्टानें — सूखे खेत — मरियल मवेशी ------ हमारी चुभलाई हड्डियां धोती के छोर में बांधती जानकी---कालाहांडी!! कालाहांडी!!!' रईसों का ऐय्याशग़ाह है कालाहांडी, जहां पांच सौ रुपए कर्ज़ देने वाले रईस कर्ज़ के ब्याज पर जानकी जैसी युवतियों का यौनशोषण करते हैं — और दुर्भाग्य से यह भाग इस देश में ही अवस्थित है. लेकिन वोट के अलावा इन आदिवासियों की दयनीयता को कोई न सुनना चाहता है न देखना. इन कहानियों के अतिरिक्त संग्रह की 'रहजन', 'किरदार', 'जानवर', 'अलाव', 'किंवदंती', 'सुअर',

'नाचो जी. आर. यार', 'क्या करे अब सरदारी लाल', 'सिर फोड़ती चिड़ियां', 'प्रसाद' और 'जन्मदाता' कहानियां भी हिंदी की उल्लेखनीय कहानियों में से हैं.

इतनी अद्भुत कहानियों के लेखक को सलाम.

फ़्लैट नं.७०५, टावर-८,
विपुल गार्डेन्स, नेशनल हाई वे-८,
धारूहेड़ा, हरियाणा-१२३१०६
मो. : ८०५९९४८२३३

प्रेम संबंधों को व्याख्यायित करता 'अवशेष प्रणय'

राजेंद्र वर्मा

अवशेष प्रणय (कहानी संग्रह) **: राजा सिंह**
प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक सदन, ६/१११, गली नं. ५, विश्वास नगर, शाहदरा, नयी दिल्ली-११००३२.
मू. ३५०/- रु.

कथाकार, राजा सिंह हिंदी जगत के सुपरिचित कथाकार हैं. देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं, जैसे- 'हंस, कथादेश, कथाक्रम, कथाबिंब, वर्तमान साहित्य, संबोधन, दूसरी परंपरा, संवेद आदि में उनकी कहानियां प्रकाशित होती रही हैं. हाल ही में का उनका कहानी संग्रह, 'अवशेष प्रणय' प्रकाशित होकर आया है जिसमें १२ कहानियां हैं. संग्रह इस दृष्टि से विशेष महत्त्व रखता है कि उसकी अधिकांश कहानियां प्रेम कहानियां हैं जो पाठक को, अविवाहित प्रेमी-प्रेमिकाओं के रेशमी पंखों का काल्पनिक संसार और दांपत्य जीवन के सुख-दुख मिश्रित यथार्थ जगत का ऐसा साक्षात कराती हैं कि पाठक कहानियों के पाठ समाप्त होने पर भी उनमें डूबता-उतराता रहता है — 'अपने पिया की मैं', 'अवशेष प्रणय', 'आख़िरी खत', 'शख़्सियत बदल गयी', 'बुत का दहन', 'उलझती ज़िंदगी' कुछ ऐसी ही कहानियां हैं. कुछ कहानियों में बेरोज़गारी और बेरोज़गार व्यक्ति को लेकर परिवार और समाज के रवैये का भी सूक्ष्मता से चित्रण किया गया है. 'बेरोज़गार', 'बदलती दिशाएं, 'जोंक', 'स्वयं पराजित' जैसी कहानियां इसी कोटि की हैं. शेष कहानियों में अंतर्जातीय विवाह, प्रेम विवाह के कारण पारिवारिक टूटन का भी चित्रण किया गया है.

'कहानी' पर कहानीकार का स्पष्ट मत है, 'हर व्यक्ति एक कहानी है और हर व्यक्ति के पास एक कहानी है. हर व्यक्ति कहानी कहता, सुनता और बोलता आया है. उनमें से कुछ बिरले लिखने का भी जोख़िम उठा लेते हैं जो कहानियों को व्यापक फलक देना चाहते हैं और अपना कुछ जोड़ना-घटाना चाहते हैं या फिर, वृहत्तर उद्देश्य के लिए उसे प्रचारित करना चाहते हैं. आप सोचेंगे कि इसमें जोखिम कैसा? 'बिलकुल है मान्यवर! जिस किसी भी उद्देश्य को लेकर कहानी लिखी गयी है, वह अपने प्रयास में कितनी सफल रही या असफल?' संग्रह की कहानियों के बारे में कहानीकार का कथन स्वागतेय है. ''मैंने वाद, विचार और प्रतिबद्धता से परे रहते हुए, जो घटित हुआ और जो जैसा है, उसी रूप में प्रस्तुत करने की कोशिश की है, परंतु निश्चय ही व्यक्तियों और घटनाओं की रिपोर्टिंग नहीं है. कहानियों में असामान्यता एवं असाधारणता से परहेज किया गाय है और सहज स्वाभाविक प्रस्तुति है. कहानियां आदर्शों वाली नहीं हैं, परंतु गर्त में डुबोने वाली भी नहीं हैं.''

संग्रह से गुज़रने पर कहानीकार के मंतव्य से सहमत हुआ जा सकता है कि उसकी कहानियां कोई आदर्श भले नहीं प्रस्तुत करें, पर उनके पात्रों में अनुभूति की वह तपिश है जो पाठक को संवेदना और मानवीय मूल्यों का पक्षधर बनाता है. लेखक अप्रत्यक्ष रूप से आदर्श की स्थापना करते हुए यथार्थ का चित्रण करता है. कहावत है — अकलमंद को इशारा काफ़ी! कहानीकार ने पाठक को संकेत में ही जीवन-मूल्यों के लिए प्रेरित किया है.

संग्रह की पहली कहानी है — 'आख़िरी ख़त', कहानी का प्रारंभ विफल प्रेमी के हाथ में प्रेमिका के विवाह के कार्ड मिलने से होती है. कहानी 'फ़्लैश बैक' में कुछ इस अंदाज़ से आगे बढ़ती है कि जैसे हर वर्णित घटना बड़ी मार्मिकता से पाठक पर घटित हो रही हो. नायक क्लर्क है. साथ ही, वह लेखन के क्षेत्र में संघर्षरत है. उसे लगता है कि नौकरी लेखन में बाधा है, इसलिए वह नौकरी छोड़ देता है. नायिका यों नायक के लेखन को बहुत पसंद करती है और उसे उत्साहित भी करती है, पर नायक का नौकरी छोड़ने पर उसकी प्रतिक्रिया उसे हतप्रभ कर देती है, ''राज! नौकरी छोड़ना तुम्हारी अस्थिर मनोवृत्ति का परिचायक है. और जो व्यक्ति अपने भविष्य को इस तरह ठोकर मार सकता है, वह मुझे नाउम्मीदियों के सिवा दे भी क्या सकता है?'' नायक अपने मन की व्यथा पत्र में दर्ज़ करता है,

''तुम्हारी दलील सुनकर मैं सन्न रह गया था और अपना-सा मुंह लेकर वापस लौट आया था. उस दिन मुझे पता चला था कि जिसे मैं बुद्धिजीवी समझता था. वह निहायत एक घरेलू लड़की है जिसके लिए संपन्नता ही सब कुछ है.''

इस कहानी के ठीक उलट कथानक की कहानी है — 'शख़्सियत बदल गयी'. यहां नायिका को केवल नायक का कवि रूप ही पसंद है. नायक नायिका के पिता से जब उसका हाथ मांगने जाता है तो उसका पिता कहता है, ''कविता से पेट नहीं भरता, ज़रूरतें पूरी नहीं होती... पहले अनीता के काबिल बनकर दिखाओ... तो बात करना!'' नायक जूनियर इंजीनियर बन जब लौटा, तो नायिका ने उसे ठुकरा दिया, ''अब क्या करने आये हो, बहुत देर हो गयी.... तुम्हारी तो शख़्सियत ही बदल गयी. मैं जिस व्यक्ति से प्यार करती थी, वह तो तुम रहे नहीं. मुझे तुम्हाला वह कवि रूप ही पसंद था. सबसे अलग. अकेले!...''

साधारण प्रेम कहानी होने के बावजूद शीर्षक कहानी, 'अवशेष प्रणय' की प्रस्तुति असाधारण है. नायक की प्रेमिका का विवाह किसी अन्य के साथ हो जाता है. बाद में नायक का भी विवाह हो जाता है. वर्षों बाद एक विवाह समारोह में नायक-नायिका अचानक मिलते हैं. नायिका में वही गर्मजोशी है, जबकि नायक उससे शिकायती अंदाज़ में मिलता है. प्रेम की असफलता से उपजे अनेक मर्मस्पर्शी प्रसंगों पर कहानी प्रकाश डालती है. कथाकार नायिका के माध्यम से अपने अवशेष प्रेम अथवा प्रणय की रक्षा करता है — ''इतने सालों से पुराने प्रसंगों का अफ़सोस मना रहे हो. गया वक़्त नहीं आने वाला और उनमें सुधार भी नहीं किया जा सकता. वर्तमान में पदार्पण करो मिस्टर 'राज!' कविता ने उसको वर्तमान में ला पटका था.

''नहीं, ऐसा कुछ नहीं.'' वह खिसियाई हंसी हंसा था. ''तो क्या अनशन करने का इरादा है?'' वह चहकी थी. और उसने उसे हाथ पकड़कर उठाया था. वह हाथ पकड़े-पकड़े ही चल दी थी जैसे कोई बच्चे की अंगुली पकड़कर चलता हो. वह झेंपता हुआ उसके साथ खाने की तरफ़ चल दिया था.

''(खाना) खाते हुए वह सोचता रहा था कि जब उसका प्यार सक्रिय था, मूर्तरूप में था, तब कभी भी उसको प्यार में स्पर्श-सुख नहीं मिला. आज जब उसका प्यार निष्क्रिय रूप में है, तो स्पर्श-सुख का अनुभव हुआ. उसे संतोष, सुख के साथ प्राप्त सुख का अहसास उसके ज़ेहन में भरता जा रहा था...''

संग्रह की अंतिम कहानी है — 'उलझती ज़िंदगी'. नारकीय दांपत्य जीवन की परतें खोलती यह कहानी कलेवर में अपेक्षाकृत बड़ी है, पर विषयवस्तु, में बिलकुल लघुकथा है. इसे कथाकार के शिल्प का कौशल ही कहा जाना चाहिए कि कहानी पाठक को अंत तक बांधे रहती है. नायक अपनी लड़ाकू पत्नी से परेशान है. पत्नी को ख़ुश रखने के लिए वह अपने मां-बाप से भी अलग रहता है, फिर भी बात नहीं बनती. ऑफ़िस में महिला सहकर्मी से हंसकर बात करने भर पर शक्की पत्नी अपने पति का घर छोड़ देती है... काफ़ी अरसे से वह माइके में रह रही है. इधर अकेलेपन से परेशान पति अपने अहम् को तज वह स्वयं को पत्नी और उसके घरवालों के सामने पूरी तरह समर्पित कर देता है, पर उन लोगों का हृदय नहीं पसीजता! देखते-ही-देखते वह अपने बेटे के लिए अजबनी बन जाताहै. थका-हारा नायक पत्नी और बच्चे को लिवाये बिना वापस लौटने को विवश है. पति-पत्नी के रिश्तों में पत्नी के रिश्तेदार कैसे ज़हर घोल देते है, इसका सटीक चित्रण भी कहानी में हुआ है.

यद्यपि यह कथाकार का पहला कथा-संग्रह है, पर उसकी कहानियां शिल्प की दृष्टि से एकदम पकी हुई है. यह अनायास नहीं है. राजा सिंह ने पहली कहानी, 'अभिशाप' लिखी थी जब वे एम. एस-सी कर रहे थे जो मोहल्ले में घटी एक घटना की प्रतिकृति थी और वह हैदराबाद की किसी पत्रिका में छपी थी. दुर्भाग्य से वह कहानी अब लेखक के पास नहीं है, इसलिए वह संग्रह में भी नहीं आ की.

अच्छी कहानी वह है जो पात्रों के वैचारिक द्वंद्व के कुहासे को छांटकर उनमें संजीवनी का आह्लाद भर दे और एक नयी जीवन-दृष्टि विकसित कर दे. इस दृष्टि से संग्रह की अनेक कहानियों को सफलता मिली है. संग्रह में भाषा की त्रुटियां पाठकीयता भंग करती है. लेखक ने कुछ शब्द गढ़ने का भी असफल प्रयास किया है, जैसे — हसूसना, सहिस्याना, ग़मोपदेशक, बे-धीरज, कहीं-कहीं वाक्य-संरचना भी क्षेत्रीयता से ग्रसित है, जबकि वह किसी पात्र का कथोपकथन नहीं है, जैसे — ''आठवीं से ज़्यादा पढ़कर नहीं दिया.'' अथवा ''वह बाहर की ओर टहल लिया.'' परंतु, ये छोटी-मोटी बातें नज़रअंदाज़ होने योग्य है. सभी कहानियों का देश स्तर की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होना उनकी गुणवत्ता को सिद्ध करता है.

✍ ३/२९, विकास नगर,
लखनऊ- २२६०२०

प्राप्ति-स्वीकार

नक़्क़ाशीदार केबिनेट (उपन्यास) : **सुधा ओम ढींगरा,** शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लेक्स, बस स्टैंड, सीहोर-४६६००१. मू. १५० रु.
अकाल में उत्सव (उपन्यास) : **पंकज सुबीर,** शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लेक्स, बस स्टैंड, सीहोर-४६६००१. मू. १५० रु.
पेंटिंग (उपन्यास) : **मृदुला साव (पारेख),** सदीनामा प्रकाशन, एच-५ गवर्नमेंट क्वार्टर्स, बजबज, कोलकाता-७००१३७. मू. ८० रु.

सूर्यबाला की लोकप्रिय कहानियां (कहानी सं.) : प्रभात प्रकाशन, ४/१९, आसफ़ अली रोड, नयी दिल्ली-११०००२. मू. २५० रु.
अमरीक सिंह दीप की चुनी हुई कहानियां (क. सं.) : अमन प्रकाशन, १०४ए/८०सी, रामबाग, कानपुर-२०८०१२. मू. ३५० रु.
शैलपर्णा की शैला (क. सं.) : **सं. डॉ. कुंवर प्रेमिल,** प्रज्ञा प्रकाशन, २४ जगदीशपुरम, रायबरेली-२२९००१. मू. ३०० रु.
तेरे चेहरे की तलाश (क. सं.) : **जितेंद्र निर्मोही,** वांङमय प्रकाशन, ई-७७६/७, लालकोठी योजना, जयपुर-३०२०१५. मू. २०० रु.
अवाक् आतंकवादी (क. सं.) **अजय सोडानी,** अंतिका प्रकाशन, शालीमार गार्डन, एक्स.-२, गाजियाबाद-२०१००५. मू. २२५ रु.
नया रास्ता (क. सं.) : **सूर्यदीन यादव,** नमन प्रकाशन, ४२३१/१, अंसारी रोड, दरिया गंज, नयी दिल्ली-११०००२. मू. २९५ रु.
अवशेष प्रणय (क. सं.) : **राजा सिंह,** राष्ट्रीय पुस्तक सदन, ६/१११, गली नं. ५, विश्वास नगर, दिल्ली-११००३२. मू. ३५० रु.
एक मृग सोने का (क. सं.) : **डॉ. उमाकांत बाजपेयी,** आशीर्वाद, २/२०, ५वां रास्ता, जुहू पार्ले स्कीम, मुंबई-४०००४९. मू. २०० रु.
मुक्ति और अन्य कहानियां (क. सं.) : **राजेंद्र वर्मा,** साहित्य भंडार, ५० ज़ीरो रोड, इलाहाबाद-२११००३. मू. १०० रु.
आनंदिता (कथा-वार्ता) : **एल. एल. श्रीवास्तव,** कामायनी, १४३/२, बलिहार रोड, मोराबादी, रांची-८३४००८. मू. १०० रु.

नई संभावनाएं (ल. सं.) : **मंगला रामचंद्रन,** शिवानी बुक्स, ४८५५/२४, हरबंस सिंह स्ट्रीट, नयी दिल्ली-११०००२. मू. २२५ रु.
अनर्थ (ल. सं.) : **कमल चोपड़ा,** अयन प्रकाशन, १/२०, महरौली, नयी दिल्ली-११००३०. मू. ३५० रु.

लोकल विद्वान (व्यंग्य) : **डॉ. अशोक भाटिया,** बोधि प्रकाशन, एफ-७७, से-९, करतारपुर इंड. एरिया, जयपुर-३०२००६. मू. ८० रु.
पद-पुराण् (व्यंग्य) : **राजेंद्र वर्मा,** अवध साहित्य प्रकाशन, २३ कृष्ण लोक कॉलोनी, मड़ियांव, लखनऊ-२२६०१०. मू. ४९५

काग़ज़ की नाव (कविता सं.) : **राजेंद्र वर्मा,** उत्तरायन प्रकाशन, के-३९७, आशियाना कॉलोनी, लखनऊ-२२६०१२. मू. १५० रु.
कुछ तो बाक़ी रह गया (क. सं.) : **विक्रमादित्य सिंह,** ज्ञान गंगा, २०५-सी, चावड़ी बाज़ार, दिल्ली-११०००६. मू. १२५ रु.
बूढ़ा पुल बेचैन (काव्य) : **म. ना. नरहरि,** असीमा प्रकाशन, ऑर्किड, एच-८०३, ठाकुर विलेज, मुंबई-४००१०१. मू. २५० रु.
हमारी बिटिया (क. सं.) : **सं. आ. ओ३म प्रकाश मिश्र,** मातृछाया, ४/४२, महादेव प्रसाद स्ट्रीट, फ़र्रुखाबाद -२०९६२५. मू. १५० रु.
ख़लिश (क. सं.) : **प्रवीण प्रणव,** गीता प्रकाशन, ४-२-७७१/ए, प्रथम तल, रामकोट, हैदराबाद-५००००१. मू. १४९ रु.
फिर (क. सं.) : **अमित कुमार मल्ल,** शिल्पायन प्रकाशन, १०२९५, लेन-१, वेस्ट गोरख पार्क, शाहदरा, दिल्ली-३२मू. २५० रु.
एक थका हुआ सच (क. सं.) : **अतिया दाऊद,** शिलालेख, ४/३२, सुभाष गली, विश्वास नगर, दिल्ली-११००३२. मू. २०० रु.

चलो एक चिट्ठी लिखें (दोहा सं.) : **हरेराम समीप,** पुस्तक बैंक, ३९५, सेक्टर-८, फरीदाबाद, १२१००६. मू. २०० रु.

कुछ ज्वाला, कुछ जल (मु. सं.) : **चंद्रसेन विराट,** समानांर प्रकाशन, तराना, उज्जैन (म. प्र). मू. ३०० रु.

दस्तख़त (ग. सं.) : **ऋषिवंश,** नमन प्रकाशन, ४२३१/१, अंसारी रोड, दरिया गंज, नयी दिल्ली-११०००२. मू. २०० रु.

सात सौ सत्रह हाइकु मंत्रम् (हाइकु सं.) : **डॉ. सतीश दुबे,** पार्वती प्रकाशन, ७३-ए, द्वारिका पुरी, इदौर-४५२००९. मू. १०० रु.

संस्कृति संरक्षण संस्था

(Regn. No. E 23216 dt. 7-2-2006)

ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई-४०० ०८८. # फ़ोन : २५५१५५४१

संस्था की गतिविधियां व उद्देश्य

भारत की सामासिक संस्कृति, साहित्य, कला, भाषा तथा स्वस्थ परंपराओं को संरक्षित एवं संवर्धित करने के उद्देश्य से ***संस्कृति संरक्षण संस्था*** की स्थापना की गयी है.

संस्था की कुछ नियमित गतिविधियां इस प्रकार हैं:

१. संगीत की कक्षाएं नियमित चलाना.

२. संस्था के भाषा-विभाग द्वारा ***"कथाबिंब"*** त्रैमासिक कहानी पत्रिका का नियमित प्रकाशन. पिछले कई वर्षों से पत्रिका ने, वर्ष २००७ के प्रारंभ में दिवंगत हुए हिंदी साहित्यकार पद्मविभूषण **श्रीयुत कमलेश्वर** की स्मृति में अपने वार्षिक कहानी पुरस्कार का नाम ***"कमलेश्वर-स्मृति कथाबिंब कथा पुरस्कार"*** रखा है. ये पुरस्कार पत्रिका में पूरे वर्ष में प्रकाशित कहानियों पर पाठकों के अभिमतों के आधार पर दिये जाते हैं. ***"कथाबिंब"*** किसी भी भाषा की एक मात्र पत्रिका है जो इस प्रकार का आयोजन करती है.

३. संगीत-नृत्य के कार्यक्रम आयोजित करना.

४. हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के कार्यक्रमों का आयोजन, जैसे : कवि-सम्मेलन व काव्य-सृजन प्रतियोगिताएं.

५. विद्यार्थियों के मन में संस्कृत भाषा के प्रति रुझान उत्पन्न करने हेतु प्रति वर्ष संस्कृत श्लोक वाचन-पठन प्रतियोगिता आयोजित करना.

६. हिंदी-पुस्तकालय प्रबंधन / संचालन.

७. जनसामान्य को सीधे प्रभावित करने वाले विषयों पर समय-समय पर संगोष्ठियों, परिचर्चाओं का आयोजन. सर्वप्रथम, १३ अक्तूबर २००७ को संस्था द्वारा आयोजित **"कंप्यूटर के विविध उपयोग और हिंदी"** विषय पर आयोजित संगोष्ठी को अप्रत्याशित सफलता प्राप्त हुई. इसी तरह **"भारतीय ऊर्जा समस्या : सुझाव व समाधान"** (१५ फरवरी २००९), **"चिकित्सा की वैकल्पिक पद्धतियां, निदान व उपचार"** (२७ फरवरी २०१०), **"शिक्षा का वर्तमान स्वरूप एवं परिवर्तन की दिशा"** (१२ मार्च २०११), **"राष्ट्र निर्माण और युवा शक्ति"** (३ फरवरी २०१३), **"वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारतीय संस्कृति की सार्थकता"** (९ मार्च २०१४), **"विश्व के उत्थान में भारतीय मनीषियों का योगदान"** (०१ फरवरी २०१५), **"डिज़ीटल इंडिया पहल में हिंदी व अन्य भाषाओं की भूमिका"** (३१ जनवरी २०१६) विषयों पर भी संगोष्ठियां आयोजित की गयीं. कहना न होगा सभी को पर्याप्त सराहना मिली.

८. देश में उपलब्ध चिकित्सा के निदान व उपचार की अन्य पद्धतियों जैसे, आयुर्वेद एवं प्राकृतिक चिकित्सा व निदान आदि के विकास में सहयोगी बनना.

९. वैदिक ज्ञान को संरक्षित करने में सहयोगी होने का प्रयास.

१०. भारतीय भाषाओं में कंप्यूटर (संगणक) के प्रयोग को सत्वरता लाने के प्रयासों में सहयोगी बनना.

११. इन सभी प्रयासों के लिए हमारी संस्था को अलग-अलग भवनों की आवश्यकता है और ऐसे सेवाभावी सहयोगियों की आवश्यकता है जो हमें इतनी राशि प्रदान करें जिसे नियतकालिक निधि के रूप में जमा किया जा सके तथा अर्जित व्याज से हम अपनी गतिविधियों का संचालन कर सकें.

नोट : संस्था को आयकर अधिनियम की धारा ८०-जी के अंतर्गत प्रमाणपत्र प्राप्त है. इसके अंतर्गत सभी दानदाता रियायत के अधिकारी हैं.